श्रेष्ठतम रूसी कहानियां

सर्वोत्तम
रूसी साहित्य
पुस्तकमाला

प्रगति प्रकाशन
मास्को

श्रेष्ठतम रूसी कहानियां

सर्वोत्तम
रूसी साहित्य
पुस्तकमाला

प्रगति प्रकाशन
मास्को

संपादक – मदनलाल ‘मधु’

АНТОЛОГИЯ РУССКОГО РАССКАЗА

КЛАССИКИ РУССКОЙ ЛИТЕРАТУРЫ

На языке хинди

अनुक्रम

पुश्किन, अलेक्सान्द्र सेर्गेयेविच (१७९९–१८३७) रूसी साहित्य की नींव रखनेवाले प्रतिभासम्पन्न कवि, नाटककार और गल्पकार। आपका साहित्य रूसी जीवन का विश्वकोष है।

'पोस्टमास्टर' (१८३१), यह कहानी, 'इवान बेल्किन की कहानियां' नामक संग्रह से ली गई है।

अलेक्सान्द्र पुश्किन

पोस्टमास्टर

पोस्टमास्टर भई, वाह!
वह तो पूरा तानाशाह।

प्रिंस व्याज़ेम्स्की

ऐसा आदमी ढूंढ़े नहीं मिलेगा, जिसने पोस्टिंग स्टेशन के मास्टरों को कभी न कोसा हो, जिसका उनके साथ झगड़ा न हुआ हो, गुस्से में उबल-उबलकर जिसने उनके स्वेच्छाचार, बेअदबी और लापरवाही के बारे में बेसिर-पैर की शिकायतों का तूमार बांधने के लिये उनसे शिकायत का रजिस्टर न मांगा हो; कौन ऐसा होगा जिसने न सोचा हो कि वे इन्सान न होकर कोई शैतान हैं—ख़त्म किये गये मुंशियों से भी

बदतर, एकदम 'मुरोम के लुटेरे'। लेकिन ज़रा न्याय से काम लेने का प्रयत्न कीजिये, उनकी स्थिति में अपने आपको रखकर ज़रा ग़ौर कीजिये, तब शायद आप उनके बारे में इतनी अनुदारता से फ़तवा नहीं दे सकेंगे। आख़िर पोस्ट-मास्टर है क्या? वास्तव में वह उन छोटे अफ़सरों में से है जो बलि का बकरा बनने के लिये जन्म लेते हैं। धक्के-मुक्कों और आघातों से सिर्फ़ उसका सरकारी पद ही उसकी रक्षा करता है, लेकिन सो भी हमेशा नहीं (पाठक अपने हृदय पर हाथ रखकर देखें, उनकी आत्मा इसकी साक्षी होगी)। और कितनी कांटों से भरी स्थिति होती है इस तानाशाह की – जैसा कि प्रिंस व्याज़ेम्स्की ने ख़ुशी की तरंग में कहा था? क्या उसका काम, सच्चे मानों में, हाड़तोड़ नहीं है? न उसे दिन को चैन है, न रात को। यात्री आते हैं और कष्टकर यात्रा की सारी परेशानियों का संताप एकबारगी पोस्टमास्टर पर उंडेल देते हैं। मौसम ज़ालिम है, तो पोस्टमास्टर का क़सूर, सड़कें बेहूदा हैं, तो पोस्टमास्टर के सिर, कोचवान ज़िद्दी और घोड़े अड़ियल हैं, तो पोस्टमास्टर की मुसीबत – हर चीज़ के लिए उसी की टांग खींची जाती है। ग़रीब के बाड़े में यात्री इस तरह पांव रखता है जैसे वह अपने दुश्मन के बाड़े में प्रवेश कर रहा हो। अगर अपने इस बेबुलाए मेहमान से वह जल्दी ही छुटकारा पा जाय, तो पोस्टमास्टर के लिए यह सौभाग्य की बात होती है। और अगर कहीं घोड़े उपलब्ध

न हुए तो... अरे, बाप रे! तब तो गालियों और धमकियों का एक पहाड़ ही उसके सिर पर टूट पड़ता है! वर्षा और कीचड़ में उसे घर-घर भागना पड़ता है; भन्नाए हुए यात्री की चीख़-चिल्लाहट और धक्के-मुक्कों से क्षण भर सांस लेने के लिए उसे ड्योढ़ी की शरण लेनी पड़ती है, जब बाहर तूफ़ान थपेड़े मारता और जनवरी का पाला शरीर को काटता होता है। कोई फ़ौजी जनरल आता है और थरथर कांपता पोस्टमास्टर अपनी आख़िरी दो त्रोइका (तीनघोड़े वाली गाड़ी) उसके हवाले कर देता है, जिनमें से एक उसने डाक ले जाने के लिए रिज़र्व रख छोड़ी थी। धन्यवाद के नाम पर एक शब्द तक जनरल अपने मुंह से नहीं निकालता और विदा हो जाता है। इसके पांच मिनट बाद ही घंटियों की आवाज़ सुनाई देती है और सरकारी हरकारा मेज़ पर हाथ पटकता हुआ ताज़ादम घोड़ों का फ़रमान उसके मुंह पर दे मारता है। इन सब परिस्थितियों पर विचार कीजिये, तब विक्षोभ के बजाय आपका हृदय सच्ची सहानुभूति से भर जाएगा। लेकिन इस विषय पर अभी कुछ और भी कहना है: पिछले बीस वर्ष में समूचे रूस के ओर-छोर की यात्रा मैं कर चुका हूं। डाक-यात्रा के क़रीब-क़रीब सभी रास्तों और कई पीढ़ियों के कोचवानों से मैं परिचित हूं। पोस्टमास्टरों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसे मैं न जानता हूं और जिससे मेरा वास्ता न पड़ा हो। यात्राओं के दौरान में संचित अपने रोचक संस्मरण

जल्दी ही प्रकाशित करने का मेरा विचार है। फ़िलहाल मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि पोस्टमास्टरों की इस जाति को जनता के सामने बेहद ग़लत रंग में पेश किया गया है। बुरी तरह लांछित हमारे ये पोस्टमास्टर साधारणतया बहुत ही शांतिप्रिय, दूसरों की ख़िदमत करनेवाले और मिलनसार जीव होते हैं। अपने बारे में उन्हें कोई ख़ास मुग़ालता नहीं होता और किसी के कपड़े उतारने की नीयत तो उनमें ज़रा भी नहीं होती। उनकी बातचीत – कतिपय सम्माननीय यात्री जिसे बकवास से अधिक नहीं समझते – बहुत ही कौतुकपूर्ण और शिक्षाप्रद होती है। जहां तक मेरा अपना सम्बंध है, सरकारी काम से यात्रा करनेवाले दरमियाने अफ़सरों की लंतरानियों की बनिस्बत मैं उनकी बातचीत अधिक पसंद करता हूं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पोस्टमास्टरों की बाइज़्ज़त बिरादरी में मेरे अनेक मित्र हैं। सच तो यह है कि इनमें से एक की स्मृति को मैं अपनी बहुत ही मूल्यवान निधि समझता हूं। अपने जीवन के एक दौर में परिस्थितिवश हम एक-दूसरे के निकट आए और गुंथ गए। अपने उदार पाठकों को यहां मैं उसी की कहानी सुनाना चाहता हूं।

मई १८१६ की बात है। संयोगवश मैं 'ऐक्स' गुबेर्निया में यात्रा कर रहा था। यात्रा का वह मार्ग अब नहीं रहा। मैं एक निम्न श्रेणी का अफ़सर था, एक चौकी से दूसरी चौकी

तक मेरी मंज़िल होती थी। जेब में इतने पैसे नहीं होते थे कि दो घोड़ों से अधिक की व्यवस्था कर सकूं। नतीजा यह कि पोस्टमास्टर मेरा कोई ख़ास लिहाज़ नहीं करते थे और जिस चीज़ को पाना मैं अपना अधिकार समझता था, मैं उसे बलपूर्वक प्राप्त करता था। मैं नौजवान और तेज़-तर्रार था। उन पोस्टमास्टरों की नीचता और ढुलमुलपन से मेरा ख़ून खौल उठता, जो मेरे लिए कसे गए घोड़ों तक को ऊंचे अफ़सरों के हवाले कर देते। ऐसे ही गवर्नर की मेज़ पर होता था, जब ऊंचे-नीचे पदों का ध्यान रखनेवाले बैरे मुझे नज़रन्दाज़ कर देते थे और मैं कसमसा जाता था। अब ये दोनों ही बातें मुझे बिल्कुल उचित मालूम होती हैं। आख़िर, तुम्हीं सोचो, सर्वप्रचलित इस नियम की जगह कि "बड़े ओहदे के आगे छोटा ओहदा सिर झुकाए", अगर यह नियम लागू कर दिया जाए कि "समझदार के आगे नासमझ सिर झुकाए", तो हम सबका क्या हश्र हो? अच्छा-ख़ासा उत्पात खड़ा हो जाए। घर के नौकर पहले किसकी सेवा करेंगे? लेकिन इसे छोड़िए, और वह क़िस्सा सुनिए, जो मैं सुनाने जा रहा था।

उस दिन बड़ी तपन थी। 'एक्स' पोस्टिंग स्टेशन से तीन वेर्स्ता* इधर हल्की फुहार पड़नी शुरू हुई और देखते-देखते

---

* वेर्स्ता – लगभग १,०७ किलोमीटर।

मूसलधार बारिश होने लगी। मैं एकदम भीग गया। स्टेशन पर पहुंचते ही तुरन्त मैंने अपने कपड़े बदले और चाय के लिए आर्डर दिया।

"ऐ दून्या!" पोस्टमास्टर ने पुकारकर कहा, "समोवार गर्म करो, और भागकर कुछ मलाई ले आओ!"

पोस्टमास्टर की आवाज़ सुनते ही चौदह साल की एक लड़की पार्टीशन के पीछे से प्रकट हुई और ड्योढ़ी की ओर दौड़ गई। उसके सौन्दर्य ने मुझे चौंधिया दिया।

"क्या यह तुम्हारी लड़की है?" मैंने पोस्टमास्टर से पूछा।

"जी हां," प्रसन्नता से हुमककर उसने जवाब दिया—"यह मेरी लड़की है। बहुत ही चतुर और तेज़, ठीक अपनी मां की भांति, जो अब नहीं रही!"

इसके बाद वहीं पर वह मेरा आर्डर अपने रजिस्टर में दर्ज करने लगा और मैंने उन तस्वीरों को देखना शुरू किया, जिनसे उसकी मामूली-सी किन्तु साफ़-सुथरी झोंपड़ी सजी थी। इन में एक उड़ाऊ-खाऊ पूत की कहानी चित्रित थी। पहले चित्र में ड्रेसिंग-गाउन और नाइट-कैप पहने एक सम्मानित बुज़ुर्ग एक चंचल युवक को विदा कर रहे थे और वह उतावलेपन के साथ उनका आशीर्वाद तथा धन की एक थैली ग्रहण कर रहा था। दूसरे चित्र में पूरे विस्तार के साथ उस युवक का उच्छृंखल चरित्र अंकित था। वह एक मेज़ पर बैठा था और मतलबी मित्र तथा बेशर्म स्त्रियां उसे घेरे

थीं। इसके बाद के एक चित्र में युवक के नाश का दृश्य अंकित था। वह फटा हुआ चोगा पहने था और सिर पर टेढ़ी टोपी रखे सुअरों का रेवड़ हांकता और उन्हीं की संगत में भोजन करता दिखाया गया था। उसके चेहरे से गहरी उदासी और पश्चाताप झलक रहा था। इस चित्रमाला के सब से अन्तिम चित्र में उसका अपने पिता के पास वापिस लौटने का दृश्य अंकित था। नेक वृद्ध इस चित्र में भी वही नाइट-कैप और ड्रेसिंग-गाउन पहने था। अपने पुत्र से मिलने के लिए वह बाहर दौड़ा आया था, पुत्र उसके पांवों पर पड़ा था, पिछले हिस्से में ख़ानसामां एक मोटे-ताज़े बछड़े को ज़िबह कर रहा था और बड़ा भाई नौकरों से इन सब ख़ुशियों का कारण पूछ रहा था। प्रत्येक चित्र के नीचे जर्मन भाषा में विषय के उपयुक्त तुकबन्दियां अंकित थीं। मैंने उन्हें पढ़ा। वह सब आज भी मेरी स्मृति में ताज़ा है। साथ ही फूलों के गमले, रंग-बिरंगे पर्दे तथा अन्य चीज़ें जो उस समय वहां मौजूद थीं, मुझे नहीं भूली हैं। घर के मालिक का चित्र–आयु क़रीब पचास वर्ष, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न, हरे रंग का लम्बा फ़ाक-कोट पहने, रंग-उड़े फीतों से लटके तीन पदकों से सुशोभित–ध्यान करते ही आज भी मेरी आंखों के आगे मूर्त्त हो उठता है।

अपने वृद्ध कोचवान का हिसाब चुकता किए अभी मुझे ज़रा भी देर नहीं हुई थी कि दून्या समोवार लिए आ गई।

उस नन्ही चुलबुली छोकरी को यह भांपते देर नहीं लगी कि उसने मुझे किस रंग में रंग दिया है, और अपनी बड़ी-बड़ी नीली आंखों को संजीदगी के साथ उसने नीचे झुका लिया। मैंने उससे बातचीत शुरू की। बिना किसी झिझक के, उस लड़की की भांति जो दुनिया के रंग-ढंग से वाक़िफ़ है, वह जवाब देने लगी। मैंने उसके पिता को एक प्याला मदिरा नज़र की, दून्या के आगे चाय का प्याला खिसका दिया और हम तीनों इस तरह घुलमिलकर बतियाने लगे, जैसे युगों से एक-दूसरे से परिचित हों।

घोड़े जुते खड़े थे, लेकिन पोस्टमास्टर और उसकी लड़की से विदा लेने को मेरा मन नहीं हो रहा था। आख़िर मैंने उनसे विदा ली, पिता ने शुभयात्रा के लिए कामना प्रकट की और लड़की मुझे छोड़ने गाड़ी तक आई। मैं ड्योढ़ी में ही ठिठक गया और उसका चुम्बन लेने की इच्छा प्रकट की। दून्या मान गई... अनगिनत चुम्बनों की याद आती है मुझे, 'जब से मैंने यह व्यापार शुरू किया', पर किसी ने भी नहीं छोड़ी इतनी अमिट और सुखद छाप!

कई वर्ष बीत गये। परिस्थितियों ने कुछ ऐसा जाल रचा कि मुझे फिर उसी रास्ते से और उन्हीं जगहों की यात्रा करनी पड़ी। मुझे पोस्टमास्टर की लड़की की याद हो आई और उसे एक बार देखने की आशा से मेरा मन ख़ुशी से भर गया। लेकिन तभी मुझे ख़याल आया कि कहीं पोस्टमास्टर

की नौकरी न छूट गई हो और यह कि हो सकता है, दून्या का अब तक विवाह भी हो गया हो। दोनों में किसी एक की मृत्यु की आशंका भी मेरे मन में कौंधी और धड़कते हृदय तथा उदास चित्त से मैं इस पोस्टिंग स्टेशन की ओर बढ़ा।

घोड़े पोस्टमास्टर के छोटे-से घर के आगे पहुंचकर रुक गए। कमरे में पांव रखते ही उड़ाऊ-खाऊ पूत की कहानी वाले चित्रों को मैंने तुरंत पहचान लिया। मेज़ और पलंग भी पहले की भांति अपनी पुरानी जगह पर मौजूद थे। केवल खिड़कियों की ओटक पर फूलों के गमले नहीं दिखाई देते थे और कमरे की हर चीज़ ह्रास तथा उपेक्षा का परिचय दे रही थी। भेड़ की खाल का कोट ओढ़े पोस्टमास्टर सो रहा था। मेरे आगमन से उसकी नींद खुल गई और वह उठकर बैठ गया... बेशक, यह वही सम्सोन वीरिन था, लेकिन कितना बुढ़ा गया था! उस समय जब कि वह रजिस्टर में मेरा आर्डर दर्ज कर रहा था, मेरी नज़र उसके सफ़ेद बालों, दाढ़ी-बढ़े गालों में पड़ी गहरी झुर्रियों और उसके झुके हुए कंधों पर गई। मैं अपने इस आश्चर्य को दबा न सका कि तीन या चार साल के अन्तर ने एक हृष्ट-पुष्ट आदमी को किस प्रकार जीर्ण-शीर्ण बनाकर छोड़ दिया है।

"मुझे नहीं पहचानते?" मैंने पूछा। "हम दोनों तो पुराने मित्र हैं!"

"हो सकता है," उसने उदास भाव से कहा, "यह काफ़ी चलता रास्ता है। अनगिनत यात्री इधर से गुज़रते हैं।"

"और तुम्हारी दून्या कैसी है?" मैंने फिर पूछा।

वृद्ध की भौंहों पर बल पड़ गए।

"ख़ुदा ही जानता है," उसने कहा।

"तो क्या उसका विवाह हो गया?" मैंने पूछा।

वृद्ध ने कुछ ऐसा भाव दिखाया जैसे उसने मेरा प्रश्न ही न सुना हो और फुसफुसाकर मेरा आर्डर पढ़ता रहा। मैंने सवाल करना बंद कर दिया और उससे केतली गर्म करने का अनुरोध किया। कौतुक मेरे हृदय को कचोट रहा था। मैंने सोचा कि मदिरा की एक मात्रा मेरे पुराने मित्र को चेतन कर देगी और उसकी ज़बान खुल निकलेगी।

मेरा अनुमान ठीक ही निकला। वृद्ध ने मदिरा का प्याला लेने से इनकार नहीं किया। मैंने देखा कि रम ने उदासी के बादलों को छांट दिया है। दूसरा प्याला मुंह से लगाते न लगाते उसकी ज़बान खुली और यह याद करके--या यह याद करने का बहाना करते हुए कि मैं कौन हूं--उसने बतियाना शुरू कर दिया। नतीजा यह कि ख़ुद उसके मुंह से मुझे निम्न क़िस्सा सुनने को मिला--एक ऐसा क़िस्सा, जिसमें मेरी दिलचस्पी थी और जिसने मेरे हृदय को बुरी तरह उद्वेलित कर दिया।

"सो तुम मेरी दून्या को जानते हो?" उसने कहना शुरू

किया। "ओह, उसे कौन नहीं जानता! आह दून्या, मेरी दून्या! क्या लड़की थी वह भी! जो भी यहां आता, उसकी तारीफ़ किए बिना न रहता। क्या मजाल जो एक बार भी किसी ने उसकी शिकायत की हो! कुलीन स्त्रियां आतीं और उसे उपहार देकर जातीं – कोई उसे रूमाल भेंट करती, कोई कानों के बुन्दे। जब भद्र लोग इधर से गुज़रते, तो जान-बूझकर यहां रुक जाते, कहने को दोपहर या सांझ का भोजन करने, लेकिन असल में दून्या को और अधिक देर तक देखते रहने के लिए। यात्री गुस्से में चाहे कितना ही उबल रहा होता, उसे देखते ही शान्त हो जाता और बड़ी भलमनसाहत के साथ मुझसे बातें करता। तुम शायद यक़ीन नहीं करोगे, शाही दरबार के लोग और राजदूत आध-आध घंटे तक उससे बतियाते रहते। मेरा सारा घर बस उसी पर टिका था – वह घर को साफ़-सुथरा रखती, खाना बनाती, हर काम करती। और मैं, बूढ़ा खूसट, अपनी आंखों में उसे समाए रखता, उसे देखकर ख़ुशी के मारे छलछला उठता। हृदय से मैं अपनी दून्या को चाहता था, बड़े प्रेम से संजोकर मैं अपनी बच्ची को रखता था। मैंने कभी उसे कोई कष्ट नहीं होने दिया था। लेकिन मुसीबत को प्रार्थनाओं से नहीं टाला जा सकता – भाग्य में जो बदा है, वह होकर रहता है।"

इसके बाद विस्तार के साथ अपने दुर्भाग्य का उसने वर्णन किया।

तीन साल पहले, जाड़ों की एक सांझ जब कि पोस्टमास्टर एक नये बहीखाते में लकीरें खींच रहा था और उसकी लड़की पार्टीशन के पीछे कोई कपड़ा सी रही थी, तभी एक त्रोइका दरवाज़े पर आकर रुकी और 'सिरकासियन' टोपी तथा फ़ौजी ग्रेटकोट पहने और गले में भारी मफ़लर लपेटे एक यात्री उसमें से उतरा। कमरे में पांव रखते ही उसने घोड़ों की फ़रमाइश की। घोड़े सब गए हुए थे। यह सुनकर यात्री की आवाज़ और उसका चाबुक दोनों ही ऊंचे उठ गए। लेकिन दून्या, जिसके लिए इस तरह के दृश्य नये नहीं थे, पार्टीशन के पीछे से बाहर दौड़ आई और बड़ी कमनीयता से उसने यात्री को सम्बोधित करके पूछा कि क्या भोजन करेंगे। दून्या के नमूदार होने का जो असर होना चाहिए था, वही हुआ। यात्री का गुस्सा नौ दो ग्यारह हो गया, वह घोड़ों की प्रतीक्षा करने के लिए राज़ी हो गया और भोजन के लिए उसने आर्डर दे दिया। उसने अपनी गीली फ़र की टोपी उतार दी, मफ़लर की लपेट खोली और अपने ग्रेटकोट को उतारकर अलग पटक दिया। अब एक दुबला-पतला, काली मूछोंवाला, हुस्सार फ़ौज का अफ़सर सामने खड़ा था। पूरे अपनत्व के साथ वह पोस्टमास्टर के घर में जम गया और देखते न देखते मगन भाव से पोस्टमास्टर तथा उसकी लड़की से बतियाने लगा। भोजन मेज़ पर आ गया। इसी बीच घोड़े भी लौट आए और पोस्टमास्टर ने उन्हें दाना-पानी दिये बिना तुरंत यात्री

की बर्फ़गाड़ी में जोतने का आदेश दिया। यह सब करके जब वह लौटा, तो उसने देखा कि युवा यात्री बेंच पर बेसुध-सा पड़ा है। उसे ग़श-सा आ रहा था, उसका सिर दर्द कर रहा था, वह इस योग्य नहीं था कि यात्रा कर सके, मजबूरी थी। पोस्टमास्टर ने अपना बिस्तर उसकी नज़र कर दिया और निश्चय किया कि अगर रोगी कल सुबह तक न संभले, तो 'क' नगर से डाक्टर बुलाया जाए।

अगले दिन हुस्सार की तबीयत और भी बदतर हो गई। उसका नौकर घोड़े पर सवार हो पास के एक नगर से डाक्टर को बुलाने चला गया। दून्या ने सिरके में रूमाल डुबोकर उसके माथे पर रखा और उसके बिस्तर के पास बैठी सिलाई का काम करती रही। पोस्टमास्टर की मौजूदगी में रोगी कराहता रहा, और उसके मुंह से एक शब्द भी मुश्किल से ही निकल पाता, हालांकि उसने दो प्याले काफ़ी पी लिए और फिर मरी-गिरी-सी आवाज़ में दोपहर के भोजन के लिए भी आर्डर दे दिया। दून्या एक क्षण के लिए भी वहां से नहीं हटी। वह बार-बार पानी मांगता और दून्या हर बार ख़ुद अपने हाथों से तैयार किये लैमोनेड का प्याला उठाकर उसे देती। वह अपने होंठों को गीला करता और प्याला लौटाते समय हर बार क्षीण उंगलियों में उसका हाथ दबाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता। भोजन के समय तक डाक्टर आ गया। उसने रोगी की नब्ज़ देखी, जर्मन भाषा में उसका हाल-चाल पूछा

और रूसी भाषा में ऐलान किया कि रोगी को केवल आराम की ज़रूरत है, और यह कि दो-एक दिन आराम करने के बाद वह यात्रा करने के योग्य हो जाएगा। हुस्सार ने फ़ीस के रूप में पच्चीस रूबल डाक्टर को भेंट किए और भोजन के लिए उसे आमंत्रित किया। डाक्टर ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और दोनों ने ख़ूब जी भरकर भोजन किया, मदिरा की पूरी एक बोतल खाली कर दी और दोनों एक-दूसरे से ख़ूब ख़ुश हुए।

एक दिन और बीत गया। हुस्सार अब बिल्कुल चंगा था। वह अत्यन्त प्रसन्न था। हंसी-मज़ाक़ की वह निरन्तर बौछार लगाए रहता—कभी दून्या से, कभी पोस्टमास्टर से। सीटी में कोई धुन उड़ा रहा था, यात्रियों से बातें करता था और उनके आर्डर रजिस्टर में दर्ज करता था। इस प्रकार पोस्टमास्टर के हृदय में उसने इस हद तक घर कर लिया कि तीसरे दिन सुबह अपने ख़ुशमिज़ाज मेहमान को विदा करते समय उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होने लगा। रविवार का दिन था। दून्या गिरजा जाने को तैयार हो रही थी। हुस्सार की बर्फ़गाड़ी लायी गई। उसने पोस्टमास्टर से विदा ली और खाने-पीने तथा रहने के लिए उसे ख़ूब पुरस्कार दिया। उसने दून्या से भी विदा ली और कहा कि मैं दून्या को गिरजे तक—जो गांव के दूसरे छोर पर था—अपनी बर्फ़-गाड़ी में पहुंचा दूंगा। यह सुन दून्या कुछ दबसट में पड़ गई...

"अरे, डरती क्यों हो?" उसके पिता ने पूछा, "श्रीमान कोई भेड़िया तो हैं नहीं, जो तुझे नोच खाएंगे। जा, ये तुझे गिरजे पर छोड़ देंगे।"

दून्या बर्फ़गाड़ी में सवार हुई और हुस्सार के बराबर में बैठ गई। नौकर उछलकर बॉक्स-सीट पर पहुंच गया, कोचवान ने सीटी दी और घोड़े सरपट दौड़ चले!

भाग्य का मारा पोस्टमास्टर कभी न समझ सका कि उसने अपनी दून्या को हुस्सार के साथ कैसे जाने दिया, वह कैसे इतना अंधा हो गया, कैसे उसने अपनी सुध-बुध बिसरा दी। आधा घंटा बीतते ही उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसके हृदय को कोई नोच रहा हो और इस हद तक चिन्ता ने उसे ग्रस लिया कि वह अपने को न रोक सका और दून्या की खोज में गिरजे की ओर चल दिया। वहां पहुंचने पर उसने देखा कि लोग गिरजे से बाहर निकल रहे हैं, लेकिन दून्या का न तो गिरजा-घर के अहाते में कुछ पता था, न ओसारे में। लपका हुआ वह गिरजे के भीतर पहुंचा। पादरी वेदी से बाहर आ चुके थे, सैक्सटन मोमबत्तियां बुझा रहा था, दो वृद्ध स्त्रियां एक कोने में अभी तक प्रार्थना कर रही थीं, लेकिन दून्या का यहां भी कोई पता नहीं था। दुःखी पिता ने, मन मारकर, आख़िर सैक्सटन से पूछा कि प्रार्थना के समय कहीं दून्या को तो उसने नहीं देखा। सैक्सटन ने जवाब दिया कि नहीं, वह प्रार्थना में शामिल नहीं थी।

पोस्टमास्टर घर लौट आया। वह जीवित से अधिक मृत मालूम होता था। एक ही आशा अब बाक़ी थी—हो सकता है कि यौवन के अल्हड़पन में आकर दून्या उसे अगले पोस्टिंग स्टेशन तक छोड़ने चली गई हो, जहां उसकी धर्म-माता भी रहती थी। अधीर वेदना के साथ वह अपने घोड़ों के लौटने की बाट जोहता रहा, जोकि उसने गाड़ी के साथ भेजे थे। सारा दिन बीत गया, लेकिन कोचवान अभी तक वापिस नहीं लौटा। आख़िर उस समय जबकि रात घिर आई थी, वह लौटा—अकेला, नशे में धुत्त, यह भयानक ख़बर लिए कि "दून्या अगले पोस्टिंग स्टेशन से हुस्सार के साथ चली गई।"

भाग्य के इस आघात को वृद्ध सह न सका और उसी रात उसने बिस्तर पकड़ लिया—वही बिस्तर जिसपर पिछले दिन वह धोखेबाज़ युवक लेटा था। उसने सारी परिस्थितियों पर फिर से ग़ौर किया। उसे अब लगा कि युवक की बीमारी बनावटी थी। बेचारे वृद्ध को जूड़ी चढ़ आई, उसका बदन बुरी तरह तपने लगा। नतीजा यह कि उसे 'क' नगर के अस्पताल में भेज दिया गया और उसकी जगह पर अस्थायी रूप से एक दूसरा पोस्टमास्टर तैनात कर दिया गया। इसी डाक्टर ने पोस्टमास्टर का भी इलाज किया, जोकि हुस्सार को देखने आया था। उसने पोस्टमास्टर को विश्वास दिलाया कि वह युवक पूर्णतया स्वस्थ था और यह कि उसकी बुरी नीयत को उसने उसी समय भांप लिया था, लेकिन

हुस्सार के चाबुक के भय से वह अपना मुंह नहीं खोल सका था। जर्मन ने जो कुछ कहा वह सच था, या अपनी सूझ-बूझ का रोब जमाने के लिए उसने यह सब कहा था, जो भी हो अभागे रोगी को इससे ज़रा भी ढाढ़स नहीं बंधा। बीमारी से अच्छा होते न होते पोस्टमास्टर ने 'क' नगर के अधिकारियों से दो महीने की छुट्टी ली और अपने इरादों के बारे में किसी से कुछ कहे बिना पैदल ही दून्या की खोज में निकल पड़ा। रजिस्टर देखकर उसने मालूम किया कि कप्तान मीन्स्की स्मोलेन्स्क से आया था और पीटर्सबर्ग की ओर जा रहा था। जो कोचवान उसे हांककर ले गया था, उसने बताया कि हालांकि दून्या अपनी मर्ज़ी से उसके साथ गई मालूम होती थी, लेकिन वह रास्ते भर रोती-कलपती रही थी। "अगर भगवान ने चाहा तो," पोस्टमास्टर ने सोचा, "राह से भटके अपने मेमने को मैं फिर घर ले आऊंगा।" इस विचार का सहारा लिए वह पीटर्सबर्ग पहुंचा और एक भूतपूर्व नान-कमीशन्ड अफ़सर के यहां—जोकि फ़ौजी जीवन का उसका पुराना साथी था—इज़माइलोव रेजिमेंट की बैरकों में टिका। यहां से उसने अपनी खोज शुरू की। उसने शीघ्र ही पता लगा लिया कि मीन्स्की पीटर्सबर्ग में है और देमुतोव की सराय में ठहरा है। पोस्टमास्टर ने उसके पास जाने का निश्चय किया।

अगले दिन तड़के ही वह हुस्सार के दरवाज़े पर जा पहुंचा

और साहिब को यह सूचना देने के लिए नौकर से कहा कि एक पुराना सैनिक उनसे मिलना चाहता है। नौकर घुड़सवारी के जूते को एक बक्से पर रखे पालिश कर रहा था। उसने बताया कि मालिक अभी सो रहे हैं और ग्यारह बजे से पहले वह किसी से नहीं मिलते। पोस्टमास्टर वहां से चला आया और नियत समय पर फिर वहां पहुंचा। ड्रेसिंग-गाउन और लाल रंग की मखमली टोपी पहने ख़ुद मीन्स्की उससे मिलने बाहर निकल आया।

"कहो भाई, तुम क्या चाहते हो?" उसने पूछा।

वृद्ध का हृदय ज़ोरों से उमड़-घुमड़ रहा था। उसकी आंखों में आंसू डबडबा आए और कांपती हुई आवाज़ में वह केवल इतनी ही बुदबुदाकर रह गया:

"सरकार... ख़ुदा के लिए... सरकार..."

मीन्स्की ने तेज़ी से एक नज़र उसे देखा। उसके गालों पर लाली दौड़ गई। पोस्टमास्टर की उसने बांह पकड़ी, अपने अध्ययन-कक्ष में उसे ले गया और भीतर से दरवाज़ा बंद कर दिया।

"सरकार," वृद्ध ने फिर कहना शुरू किया, "उतरा हुआ पानी फिर नहीं लौटता। लेकिन कम से कम मेरी बेचारी दून्या को मुझे लौटा दीजिए। रास-रंग तो आप कर चुके, अब उसका जीवन बेमतलब धूल में न मिलाइए।"

"जो हो गया है, उसे पलटा नहीं जा सकता," युवक ने, जो प्रत्यक्षत: औचक में पड़ गया था, जवाब दिया, "मैंने अपराध किया है और इसके लिए मैं तुमसे क्षमा मांगने को तैयार हूं। लेकिन तुम्हें यह नहीं समझना चाहिए कि मैं दून्या को कूड़े के ढेर पर फेंक दूंगा। नहीं, मैं इतना गिरा हुआ नहीं हूं। वह सुख से रहेगी, इसका मैं तुम्हें वचन देता हूं। तुम उसका करोगे भी क्या? वह मुझसे प्रेम करती है, पुराने ढंग से फिर वही जीवन बिताना उसके वश की बात नहीं। जो कुछ हो गया है, उसे न तो तुम आंखों की ओट कर सकते हो, न ही दून्या उसे टाल सकती है।"

इसके बाद वृद्ध की आस्तीन में कुछ खोंसते हुए उसने दरवाज़ा खोला और वृद्ध, जाने कैसे, फिर सड़क पर आ गया।

देर तक वह निश्चल खड़ा रहा। अंत में अपनी आस्तीन की ओर उसका ध्यान गया। उसने देखा कि कफ़ के भीतर काग़ज़ में लिपटा एक बण्डल खुंसा है। उसने उसे बाहर निकाला। खोलकर देखा—पचास रूबल के कई नोट थे। उसकी आंखों में फिर आंसू घुमड़ आए—विक्षोभ और विरोध के आंसू। उसने नोटों को मसल डाला, उनकी गोली बनाई और सड़क पर पटककर उन्हें अपने पांवों से रौंदा और इसके बाद वहां से चल दिया... कुछ ही डग गया होगा कि वह फिर थिर हो गया, मन ही मन उसने कुछ सोचा और... उसके पांव फिर वापिस लौट चले। लेकिन नोट अब वहां

नहीं थे। लक़दक़ कपड़े पहने एक युवक ने उसे आता देखा, तेज़ी से एक गाड़ी की ओर लपका, उसमें सवार हो गया और कोचवान से चिल्लाकर बोला—"सीधे बढ़ चलो!" पोस्टमास्टर ने उसका पीछा करने का प्रयत्न नहीं किया। उसने अपने पोस्टिंगस्टेशन लौट जाने का निश्चय किया, लेकिन जाने से पहले—अगर सम्भव हो तो—एक बार अपनी दून्या को वह अवश्य देख लेना चाहता था। सो, दो दिन बाद, वह फिर मीन्स्की के घर पहुंचा। लेकिन फ़ौजी नौकर ने कड़ाई के साथ कहा कि मालिक किसी से नहीं मिल सकते, धकियाकर उसे हॉल से बाहर निकाला और झटके से दरवाज़ा बंद कर दिया। कुछ देर तक तो पोस्टमास्टर बाहर खड़ा रहा, फिर वापिस लौट आया।

उसी सांझ, सर्व शहीदों के गिरजे की प्रार्थना में शामिल होने के बाद वह लितेइनाया स्ट्रीट से गुज़र रहा था। तभी एक बहुत ही बढ़िया गाड़ी उसके पास से निकली। पोस्टमास्टर ने देखा कि इसमें मीन्स्की था। एक तिमंज़िले मकान के निकट पहुंच गाड़ी रुक गई और मीन्स्की उछलकर पोर्च में पहुंच गया। तभी पोस्टमास्टर के मस्तिष्क में एक सुखद विचार आया। मुड़कर वह गाड़ी के पास पहुंचा और कोचवान से उसने पूछा :

"यह किसकी गाड़ी है, भाई? कहीं मीन्स्की की तो नहीं?"

"हां उन्हीं की है," कोचवान ने कहा, "लेकिन तुम्हें उनसे क्या?"

"अभी बताता हूं। तुम्हारे मालिक ने मुझे एक पुर्ज़ा दिया था कि इसे दून्या के पास पहुंचा देना। लेकिन मैं भूल गया कि वह—उनकी दून्या—कहां रहती है।"

"अरे, वह तो यहीं रहती है, दूसरे तल्ले पर। लेकिन भाई, तुम अपना पुर्ज़ा लेकर देर में पहुंचे। पुर्ज़े के बजाय अब तो मालिक ही उसके पास मौजूद होंगे।"

"कोई बात नहीं," हृदय में एक अजीब धुकधुकी लिए पोस्टमास्टर ने कहा, "स्थिति स्पष्ट करने के लिए धन्यवाद। लेकिन मुझे तो अपने वचन का निर्वाह करना ही चाहिए।" यह कहते हुए वह सीढ़ियां चढ़ गया।

दरवाज़ा भीतर से बंद था। उसने घंटी बजाई और कई क्षणों तक बेचैनी से कसमसाता रहा। ताले में चाबी के खनकने की आवाज़ आई। दरवाज़ा खुला।

"क्या आव्दोत्या सम्सोनोव्ना यहीं रहती है?" उसने पूछा।

"हां," युवा दासी ने जवाब दिया, "क्यों उनसे क्या काम है?"

बिना कोई जवाब दिए पोस्टमास्टर भीतर बढ़ चला।

"नहीं, तुम भीतर नहीं जा सकते," दासी पीछे से चिल्लाई, "आव्दोत्या सम्सोनोव्ना इस समय मेहमान के साथ हैं।"

लेकिन पोस्टमास्टर ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह आगे बढ़ता ही गया। पहले दो कमरे, जिनमें से वह गुज़रा, अंधेरे थे, लेकिन तीसरे में रोशनी झलक रही थी। दरवाज़ा खुला था। वह उसकी ओर बढ़ा और ठिठककर रह गया। कमरा बहुत ही शान से सजा था और मीन्स्की गहरे विचारों में डूबा बैठा था। दून्या आधुनिकतम फ़ैशन की पुतली बनी, उसकी कुर्सी की बांह पर इस तरह बैठी थी जैसे अंग्रेज़ी ढंग से बग़लरुख घोड़े की काठी पर बैठी हो। वह बड़े चाव से मीन्स्की की ओर देख रही थी और उसके काले घुंघराले बालों को अपनी उंगलियों के इर्द-गिर्द लपेट रही थी। उसकी उंगलियों में हीरे चमचमा रहे थे। बेचारा पोस्टमास्टर! इतने सुन्दर रूप में अपनी लड़की को उसने पहले कभी नहीं देखा था। मुग्धभाव से वह बस देखता ही रहा।

सहसा, बिना सिर उठाए, दून्या ने पूछा: "कौन है?"

वह चुप खड़ा रहा। कोई जवाब न पाकर दून्या ने अपना सिर उठाया... और एक चीख़ मारकर क़ालीन पर गिर पड़ी। चौंककर मीन्स्की उसे उठाने के लिए लपका, लेकिन दरवाज़े पर वृद्ध पोस्टमास्टर को देखकर उसने दून्या को छोड़ दिया और ग़ुस्से से थरथराता उसके निकट पहुंचा।

"तुम क्या चाहते हो?" बत्तीसी भींचते हुए उसने कहा। "तुम क्यों चोरों की तरह मेरे पीछे पड़े हो? क्या तुम मेरी जान लेना चाहते हो? निकल जाओ यहां से!" अपने मज़बूत

हाथ में उसने वृद्ध के कोट का कालर दबोचा और उसे बाहर ज़ीने की ओर धकेल दिया।

वृद्ध फिर अपने ठिकाने पर लौट आया। उसके मित्र ने सलाह दी कि वह अपनी शिकायत दर्ज करा दे। पोस्टमास्टर ने इसपर सोचा और एक ही बार हाथ झटककर इस सलाह को रद्द कर दिया। उसने मामले को वहीं छोड़ देने का निश्चय किया। इसके दो दिन बाद पीटर्सबर्ग से विदा होकर वह अपने स्टेशन पर लौट आया और अपना पहले वाला काम संभाल लिया।

"इस बात को अब तीन साल होने आए," अन्त में उसने कहा, "तब से बिना दून्या के – बिना उसकी किसी ख़ैर-ख़बर के – मैं अपने दिन काट रहा हूं। भगवान ही जाने, वह ज़िन्दा है या मर गई। इस दुनिया में सभी कुछ सम्भव है। राह चलते किसी छैले जवान, छैल-चिकनिया के चंगुल में फंसनेवाली लड़कियों में वह पहली और आख़िरी लड़की नहीं है, जो शुरू-शुरू में तो मौज करती है और फिर कूड़े के ढेर पर फेंक दी जाती है। पीटर्सबर्ग में ऐसी बुद्धू युवतियां ढेर सारी मिल जाएंगी। आज वह साटिन और रेशम से लदी हैं और कल – यह तुम निश्चय ही जानो – कीचड़ से भरी सड़कों के चौराहे बुहारती नज़र आएंगी। जब कभी दून्या के इस प्रकार वहां धूल में मिलने का मुझे ख़याल आता है,

तो यह अशुभ कामना मेरे हृदय में उठे बिना नहीं रहती कि अच्छा होता अगर वह मर जाती..."

मेरे मित्र वृद्ध पोस्टमास्टर की यही कहानी है। इस कहानी को सुनाते समय आंसुओं से बार-बार उसका गला रुंध जाता था और वह कोट के छोर से उन्हें पोंछ देता – उसी अन्दाज़ से जिससे कि द्मीत्रियेव की प्रसिद्ध कविता में लवलीन तेरेन्तिच* करता है। ये आंसू, एक हद तक, शराब के कारण भी उमड़ आए थे। कहानी सुनाने के दौरान वह लगातार पांच गिलास ख़ाली कर चुका था। जो हो, उसके इन आंसुओं ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। उससे विदा होने के बाद भी एक लम्बे अर्से तक न मैं वृद्ध पोस्टमास्टर का ख़याल अपने दिमाग़ से निकाल सका, और न उसकी अभागी दून्या के बारे में सोचना ही बन्द कर सका।

कुछ दिन हुए मुझे फिर 'ऐक्स' गांव से गुज़रना पड़ा और अपने वृद्ध मित्र की मुझे याद हो आई। मालूम हुआ कि वह पोस्टिंग स्टेशन, जिसका वह एकच्छत स्वामी था, अब नहीं रहा। और इस सवाल का कि "क्या पोस्टमास्टर अभी भी ज़िन्दा है?" मुझे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल सका। जो हो, उस सुपरिचित जगह को देखने का मोह मैं

---

* अठारहवीं शती के एक रूसी कवि इवान द्मीत्रियेव की 'व्यंग-चित्र' शीर्षक कविता में वर्णित बन्धक-दास तेरेन्तिच।

नहीं छोड़ सका और किराये पर एक गाड़ी ले 'एन' गांव की ओर चल दिया।

पतझड़ के दिन थे। आकाश भूरे बादलों से घिरा था। सूने खेतों से ठंडी हवा बह रही थी। राह में मिलनेवाले पेड़ों के पीले और लाल पत्तों को वह अपने साथ उड़ाकर ला रही थी। ठीक सूरज छिपने से पहले मैं 'एन' गांव में पहुंचा और पोस्टमास्टर के घर के सामने जाकर रुक गया। एक हृष्ट-पुष्ट स्त्री ड्योढ़ी में (जहां बेचारी दून्या ने कभी मेरा चुम्बन लिया था) निकल आई। पूछताछ करने पर उसने बताया कि वृद्ध पोस्टमास्टर को मरे एक साल हो गया, यह कि उसके घर में अब एक बीयर बनानेवाला रहता है और यह कि वह उसी बीयर बनानेवाले की बीवी है। मुझे अपनी इस बेकार यात्रा और सात रूबल पर जो ख़र्च हुए थे, दुःख हुआ।

"उसकी मृत्यु कैसे हुई?" मैंने बीयर बनानेवाले की पत्नी से पूछा।

"वह इतनी पीने लगा था कि उसी में मर गया," उसने कहा।

"वह किस जगह दफ़नाया गया है?"

"गांव के ठीक उस छोर पर, अपनी पत्नी के बराबर में।"

"क्या मुझे कोई वहां तक पहुंचा सकता है?"

"क्यों नहीं। ऐ वान्का! अरे, उस बिल्ली का पीछा छोड़। देख इन्हें क़ब्रिस्तान ले जा और वहां पोस्टमास्टर की क़ब्र बता देना।"

चिथड़ों में लिपटा, लाल बालों और एक आंख वाला एक लड़का दौड़ा हुआ बाहर आया और मुझे गांव के छोर की ओर ले चला।

"क्या तुम पोस्टमास्टर को जानते थे?" रास्ते में मैंने उससे पूछा।

"क्यों नहीं। वह मुझे सीटी बनाना सिखाते थे। जब भी वह दारूघर से बाहर निकलते (भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे!) तो हम चिल्लाते हुए उनके पीछे पड़ जाते। कहते–'चाचा, चाचा हमें गिरी दो!' और वह हमें सारी गिरियां दे डालते। वह हमेशा हम लोगों के साथ हंसते-खेलते रहते थे।"

"अच्छा तो अब यह बताओ कि इधर से गुज़रनेवाले या यात्रियों में से भी कभी कोई उनको याद करता है?"

"अब यात्री आते ही कहां हैं? कोई सरकारी अफ़सर आए तो बात दूसरी है, और सरकारी अफ़सर मुर्दों की बात नहीं पूछते। लेकिन इस साल गर्मियों में एक रईसज़ादी आई थी। उसने पोस्टमास्टर के बारे में पूछा था और वह उनकी क़ब्र पर भी गई थी।"

"कैसी रईसज़ादी थी वह?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"बहुत ही सुन्दर," लड़के ने कहा, "वह छः घोड़ों की गाड़ी में आई थी। तीन बच्चे, एक नर्स और छोटा-सा काला कुत्ता उसके साथ था। जब उसने यह सुना कि पोस्टमास्टर मर गया, तो वह रो उठी और बच्चों से उसने कहा–'तुम चुपचाप यहीं ठहरो। मैं ज़रा क़ब्रिस्तान हो आऊं।' मैं साथ चलने के लिए तैयार हुआ, लेकिन वह बोली–'मैं रास्ता जानती हूं। अपने आप चली जाऊंगी।' और उसने मुझे पांच कोपेक का चांदी का एक सिक्का दिया। इतनी भली थी वह!"

हम क़ब्रिस्तान में पहुंचे। बहुत ही ऊजड़ स्थान था। बचाव के लिए न कोई बाड़ा था, न और कुछ। लकड़ी के क्रास जहां-तहां छितरे थे, कहीं एक पेड़-पौधा नहीं था, छाया का नाम-निशान नहीं था। अपने जीवन में इतना उदास क़ब्रिस्तान मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

"वृद्ध पोस्टमास्टर की क़ब्र यह है," रेत के एक ढूह पर उछलकर चढ़ते हुए छोटे लड़के ने कहा। ढूह में एक काला क्रास धंसा था और क्रास में तांबे की एक देव-प्रतिमा जड़ी थी।

"क्या वह रईसज़ादी यहीं आई थी?" मैंने पूछा।

"हां," वान्का ने जवाब दिया, "मैं दूर से छिपकर देख रहा था। वह यहां आकर गिर पड़ी और देर तक वैसे ही पड़ी रही। इसके बाद वह गांव में गई, पादरी को बुलाकर उसने उसे कुछ धन दिया और चली गई। जाते समय उसने

मुझे पांच कोपेक का चांदी का एक सिक्का दिया – इतनी रईसज़ादी थी वह!"

मैंने भी लड़के को पांच कोपेक का एक सिक्का दिया। अब मेरे हृदय में कोई दुःख या अफ़सोस नहीं था – न तो अपनी इस यात्रा का, न उन सात रूबलों का, जो इस यात्रा में ख़र्च हुए थे।

गोगोल, निकोलाई वसील्येविच (१८०९–१८५२) – महान लेखक और व्यंग्यकार। आपने रूसी साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद का शुभारम्भ किया।

'सोरोचिनत्सी का मेला' (१८३०), यह कहानी हंसी-मज़ाक़ से भरपूर और काव्यात्मक कहानी-संग्रह 'दिकान्का क़स्बे की शामें' से ली गई है।

निकोलाई गोगोल

सोरोचिनत्सी का मेला

१

घर में मेरा जी न लगे,
चलो, ले चलो मुझे वहां
जहां धूम हो, शोर जहां
सांझ-सवेरे गूंजें गीत
युवा दिलों में छलके प्रीत।
(एक पुराने गाथाकाव्य से)

कैसा मस्तीभरा, कैसा शानदार होता है उक्रइना में गर्मियों का दिन! कैसी चिलचिलाती धूप, गहरे सन्नाटे और गर्मी में डूबी हुई होती है दोपहर, जब गुम्बज की तरह धरती की छाती पर छाया हुआ सीमाहीन नीलाकाश मानो अपनी प्यारी को बांहों में जकड़कर सुख-सपनों में खोया-सा लगता है। ऊपर बादल का नाम-निशान तक नहीं और नीचे कहीं कोई आवाज़ नहीं होती। ऐसा महसूस होता है कि हर चीज़

पर मौत की छाया पड़ चुकी है। सिर्फ़ नीलाकाश की ऊंचाइयों में लवा पंख फड़फड़ा देता है और हवा के तारों पर तैरते हुए रजत-रुपहले गीत प्रणय-पीड़ा में डूबी हुई धरती पर उतरा करते हैं। कभी-कभी किसी भूली-भटकी गंगाचिल्ली की आवाज़ गूंज उठती है या बटेर की आवाज़ दूर तक मैदान में छा जाती है। शाह बलूत के ऊंघते-से ऊंचे-ऊंचे पेड़ अपनी मस्ती और फक्कड़पन के कारण, इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने-फिरनेवाले लोगों के समान नज़र आते हैं। आंखों को चकाचौंध करनेवाली प्रखर किरणें फूल-पत्तियों के समूचे सौन्दर्य को जगमगा देती हैं, मगर कुछ पर रात की सी काली छाया डाल जाती हैं। पर जब हवा का तेज़ झोंका आता है, तो फूल-पत्तियों के गिर्द सुनहरा जाल-सा बुना जाता है। रंग-बिरंगी बाटिकाओं में सूरजमुखी के शानदार पौधे गर्व से सिर ऊंचा किये खड़े रहते हैं। वहां हवा में तैरते हुए मरकत, पुखराज और लालों के टुकड़ों के समान कीड़े अपनी छटा दिखा जाते हैं। सूखी घास के मटमैले ढेर और अनाज की सुनहरी पूलियां ख़ेमों की भांति मैदान के असीम विस्तार में दूर-दूर तक फैली रहती हैं। चेरी, बेर, सेबों और नाशपातियों के पेड़ों की चौड़ी-चौड़ी टहनियां फलों के बोझ से झुक जाती हैं। आकाश ऐसा निर्मल होता है मानो दर्पण! हरियाली के गर्वोन्नत चौखटे में जड़ा हुआ-सा वह बहती हुई नदी जैसा लगता है। कितनी नशीली, कैसी मस्तीभरी होती है उक्रइना की गर्मी!

अगस्त महीने की ऐसी ही शानदार गर्मी के एक दिन की बात है। सन् अठारह सौ... अठारह सौ... हां यही कोई तीस बरस हुए जब सोरोचिनत्सी नामक गांव को जानेवाली सड़क दस कोस की दूरी तक मेले में जानेवालों की भीड़ से अटी पड़ी थी। उतावली मचाती हुई यह भीड़ निकट-दूर के गांवों से उमड़ी आ रही थी। तड़के से नमक और मछली से लदी हुई गाड़ियों का तांता लगा हुआ था। सूखी घास में लिपटे हुए मिट्टी के बर्तनों के छोटे-छोटे टीले मानो सड़क पर रेंगते चले जा रहे थे। अंधेरे की क़ैद में वे मानो ऊब से गये थे। गाड़ियों पर लदे हुए इन टीलों के पिछले भाग से कोई चमकता-दमकता कुल्हड़ या बेलबूटों वाला मर्तबान अपनी शान दिखाता हुआ ज़रा बाहर को झांकने लगता। ऐसी ख़ूबसूरत चीज़ों के शौक़ीनों की नज़रें इनपर टिकी की टिकी रह जातीं। लम्बे क़द का कुम्हार अपने माल के पीछे-पीछे धीरे-धीरे चल रहा था। बहुत-से राहगीर उसे स्पर्द्धा की दृष्टि से देखते थे। वह अपने मिट्टी के बांके-छैलों को सूखी घास में ठोंसता जाता था, जोकि उन्हें नापसन्द था।

सड़क के किनारे-किनारे दूसरी गाड़ियों से अलग-थलग एक गाड़ी रेंगती चली जा रही थी। थके-हारे बैलों की जोड़ी उसे खींच रही थी। उसपर ऊपर-तले बहुत-से बोरे लदे हुए थे, गाढ़े और पटसन का माल और घर-गिरस्ती की ज़रूरत की बहुत-सी चीज़ें रखी हुई थीं। गाड़ी का मालिक गाढ़े की साफ़-

सुथरी क़मीज़ और मैली-सी शलवार पहने था। उसके सांवले चेहरे पर पसीने की धारें बही चली जा रही थीं, जिसे वह ढीले हाथों से पोंछ रहा था। पसीने का यह आलम था कि उसकी लम्बी मूंछों तक से चू रहा था। उसकी मूंछों पर उसी निष्ठुर-निर्मम नाई ने पाउडर मला था, जो बिन बुलाये मेहमान की तरह सुन्दर-असुन्दर सभी की खोपड़ी पर आ सवार होता है और जो हज़ारों बरसों से सारी मानवजाति को ज़बर्दस्ती पाउडर मलता चला आ रहा है। उसकी बग़ल में गाड़ी से बंधी हुई एक घोड़ी चल रही थी। उसकी चालढाल, शक्ल-सूरत उसके बुढ़ापे की सूचक थी।

बहुत-से राहगीर विशेषतः युवक जब हमारे इस किसान के पास से गुज़रते, तो अपनी टोपियां उतार लेते। मगर वे उसकी खिचड़ी मूंछों या रोबीली चाल के कारण ऐसा करते हों, सो बात नहीं थी। इस आदरभाव का कारण समझने के लिए नज़र को ज़रा ऊपर उठाने की ज़रूरत थी: गाड़ी पर उसकी सुन्दर बिटिया बैठी थी। गोल-मटोल चेहरा, हल्की बादामी आंखों के ऊपर कमान की तरह तनी हुई काली भौंहें और मस्ती से मुस्कराते हुए रसीले गुलाबी होंठ, ऐसी थी वह लड़की। अपने सुन्दर सिर को उसने फूल-माला से एक ताज की तरह सजा रखा था। उस ताज के नीचे लम्बी-लम्बी चोटियां और लाल-नीले फीते लटक रहे थे। हर चीज़ उसे दिलचस्प लग रही थी, हर चीज़ उसके लिए नई-नई और

अद्भुत थी। उसकी प्यारी-प्यारी आंखें कभी एक तो, कभी दूसरी चीज़ पर मुग्ध हो जातीं। ऐसी दिलचस्पी थी भी स्वाभाविक। वह पहली बार मेले को जा रही थी! अठारह वर्ष की उम्र और पहली बार मेले में जाने की उमंग! राहगीरों में से कोई यह नहीं जानता था कि मेले में साथ ले चलने के लिये उसने अपने पिता को कैसी मुश्किलों-मुसीबतों से राज़ी किया था। बाप तो उसे कभी का मेले में ले गया होता, अगर लड़की की द्वेषपूर्ण सौतेली मां उसे ऐसा करने भी तो देती। वह अपने मियां को उसी तरह अपने इशारों पर नचाती थी, जैसे वह अपनी बूढ़ी घोड़ी को! उस घोड़ी को जो अपनी बरसों-बरस की सेवा का इनाम पानेवाली थी यानी मेले में उसके पैसे खड़े किये जानेवाली थे। ओह वह औरत क्या थी, जीती-जागती मुसीबत थी! पर हम यह तो भूले ही जा रहे हैं कि वह भी बोझ के ऊपर डटी हुई थी। वह छोटी-छोटी डोरियों से सुसज्जित भड़कीले हरे रंग की ऊनी जाकेट पहने थी। जाकेट की डोरियां वैसी ही थीं जैसी कि बढ़िया फ़र पर पूंछें होती हैं। फ़र्क सिर्फ़ यह था कि ये लाल रंग की थीं। वह शतरंज-पट्टिका के समान शानदार चौख़ाना घाघरा डाटे थी। उसके सिर पर फूलदार छींट की टोपी बहार दे रही थी, जिसने उसके गोल और लाल-लाल चेहरे पर घमंड की झलक पैदा कर दी थी। उसके चेहरे पर चिड़चिड़े और झगड़ालू स्वभाव की ऐसी गहरी छाप अंकित

थी कि जो कोई उसे देखता झटपट आंखें फेर लेता और लड़की के मनमोहक रूप पर मुग्ध होने लगता।

मेले के मुसाफ़िरों को अब प्सोल नदी दिखाई देने लगी थी। वैसे तो उन्होंने दूर से ही उसकी ताज़गी, उसकी शीतलता अनुभव की थी, जो तन झुलसने और थका देनेवाली गर्मी के बाद तो विशेष रूप से प्यारी लगती है। मैदान में जहां-तहां चिनार और बर्च के वृक्ष बेपरवाही से फैले हुए थे। उनकी गहरी और हल्की हरियाली के बीच से पानी की ठंडी चमक की झलक मिल रही थी। सुन्दर नदी अपनी चमकती हुई रुपहली छाती खोले थी। वृक्षों की हरी-भरी टहनियां उसके ऊपर काफ़ी झुकी हुई थीं। वैसे इस नदी का हाल था एक मनमौजी रूपसी का सा! रूपवती नारी की अपने ही रूप पर मर मिटनेवाली घड़ियों की कल्पना कीजिये। वह दर्पण के सामने है, अपने सुन्दर-सुडौल और जगमग करते माथे को देखती है, सफ़ेद कमल जैसे अपने कंधों को निहारती है और बालों की काली-काली घटाओं में घिरी हुई अपनी मरमरी गर्दन को आंकती है। वह एक ज़ेवर पहनकर देखती है, उसे नापसन्द करती है, उतारकर एक तरफ़ रख देती है, फिर दूसरा आज़माती है और ऐसे नाज़-नख़रे करती है कि क्या कहिये! इसी तरह यह नदी भी लगभग हर वर्ष अपना रास्ता बदल डालती थी, कहीं की कहीं जा पहुंचती थी और फिर नये तथा रंग-बिरंगे दृश्यों से घिर जाती थी। पन-

चक्कियों की क़तारें अपने भारी-भरकम पहियों से नदी की बड़ी-बड़ी लहरों को ऊपर उठातीं, फिर ज़ोर से नीचे दबा देतीं, उन्हें मथकर फेन में बदल डालतीं, ढेरों छींटे उड़ातीं और ख़ूब शोर करतीं। हम जिन लोगों की चर्चा कर चुके हैं, उनको लिये हुए एक गाड़ी इसी समय पुल पर पहुंची। नदी अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य की झलक दिखाती हुई, अपनी पूरी शान-बान के साथ, शीशे की एक चादर की भांति नज़र आ रही थी। आकाश, हरा और गहरा नीला जंगल, लोग-बाग, मिट्टी के बर्तनों से भरी गाड़ियां और पन-चक्कियां, सभी कुछ उलट-पलट गया, मगर इस प्यारी और नीली अथाह गहराइयों में डूबा नहीं।

इस शानदार दृश्य को देखती हुई हमारी यह रूपसी आत्म-विभोर हो उठी। रास्ते भर वह सूरजमुखी के बीज कुड़कती आई थी, अब उसे उनकी सुध भी नहीं रही थी। "क्या छोकरी है!" अचानक ये शब्द उसे सुनाई दिये। उसने इधर-उधर नज़र घुमाई और पुल पर लड़कों की एक टोली खड़ी देखी। उनमें से एक कुछ अधिक ही बना-ठना था। वह सफ़ेद जाकेट और भेड़ की खाल की झबरी टोपी पहने था। वह कमर पर हाथ रखकर खड़ा था और बड़ी अदा से राहगीरों को तक रहा था। बरबस ही लड़की की नज़र लड़के के संवलाये हुए, मगर सुन्दर चेहरे और चमकती हुई आंखों की ओर खिंच गई। उसे लगा कि लड़के की चमकती आंखें

तो मानो उसके तन के आर-पार हुई जा रही हैं। तभी उसे ख़्याल आया कि शायद इसी लड़के ने वे शब्द कहे हों, और उसकी आंखें झुक गईं।

"क्या ग़ज़ब की छोकरी है!" लड़की को एकटक देखते हुए सफ़ेद जाकेट वाले लड़के ने अपने शब्द दोहराये। "इसे एकबार चूम लेने के लिए मैं अपना सब कुछ देने को तैयार हूं। मगर उसे तो देखो, उस चुड़ैल को जो आगे को बैठी है!"

हवा में चारों तरफ़ ज़ोर के ठहाके गूंज गये। मगर ढीले-ढाले किसान की बनी-ठनी बीबी को प्रशंसा के ये शब्द तीर की तरह चुभे। उसके लाल-लाल गाल तमतमा उठे और उसने चुनी-चुनी गालियों की बरसात शुरू कर दी।

"बेड़ा ग़र्क़ को तुम्हारा, बदमाश कहीं के! सिर फूट जाये तुम्हारे बाप का! टांग टूट जाये बर्फ़ पर गिरकर उस काफ़िर की! जहन्नुम में शैतान उसकी दाढ़ी नोचे!"

"अरे देखो तो कैसे ज़बान चला रही है!" गालियों की अप्रत्याशित बौछार के कारण आश्चर्यचकित होकर लड़के ने उसे घूरते हुए कहा। "सौ बरस की बूढ़ी-खूसट, चुड़ैल की तरह कोस रही है और उसे शर्म भी नहीं आती!"

"सौ बरस की?" प्रौढ़ा सुन्दरी और भड़की। "नीच पाजी! ज़रा अपनी सूरत तो देख कमीने! मैंने तुम्हारी मां देखी तो नहीं, मगर होगी ज़रूर कोई नरक का कीड़ा! तुम्हारा बाप नरक का कीड़ा! तुम्हारी बूआ नरक का कीड़ा!

सौ बरस की बताता है! अभी तो दूध की बू आ रही है तेरे मुंह से..."

गाड़ी पुल से नीचे उतर रही थी और आख़िरी शब्द सुनाई नहीं दिये। मगर लड़का तो स्पष्टतः इस बात पर तुला हुआ था कि क़िस्सा यहीं ख़त्म न हो। उसने आव देखा न ताव, मुट्ठी भर कीचड़ लिया और उसपर दे मारा। निशाना ऐसा ठीक बैठा कि क्या कहिये! छींट की नई टोपी कीचड़ से लथपथ हो गई। शरारती लड़कों के ठहाके और अधिक ज़ोर-शोर से गूंजे। हट्टी-कट्टी सुन्दरी आग-बबूला हुई जा रही थी, मगर करती तो क्या? इसी बीच गाड़ी काफ़ी दूर जा चुकी थी। उसने अपनी खीझ और ग़ुस्सा अपनी मासूम सौतेली बेटी और ढीले-ढाले मियां पर निकाला। मियां एक अर्से से बीवी की ऐसी बकझक का आदी था। वह तो एकदम मौन साधे रहा, कान दबाये बीवी की बक-बक सुनता रहा। मगर उसकी ख़ामोशी भी काम न आई और बीवी अपनी सनक में कचर-कचर कैंची चलाती ही गई। गाड़ी जब तक नगर के छोर पर उनके पुराने मित्र और मियां के लंगोटिया यार त्सिबूल्या नामक कज़्ज़ाक के घर के सामने नहीं जा पहुंची, यह औरत अपने फूल बरसाती रही। पुराने दोस्त बहुत अर्से के बाद मिले। कुछ समय के लिए इस अप्रिय घटना का किसी को भी ध्यान नहीं रहा। हमारे यात्री मेले की बातें करने लगे और लम्बे सफ़र के बाद उन्हें आराम नसीब हुआ।

२

भई वाह ! क्या रंग हैं मेले के !
क्या नहीं है वहां ! पहिये , शीशे ,
तारकोल , तम्बाकू , पेटियां , प्याज़ ,
हर माल मौजूद है... तीस
रूबल भी हों जेब में तो भी थोड़े रहें
मेले का सारा सामान ख़रीदने के लिये।

(एक उक्रइनी प्रहसन से)

शायद आपने तेज़ रफ़्तारवाले जलप्रपात का कानों के पर्दे फाड़ता हुआ शोर सुना होगा। उसके इर्द-गिर्द हवा में एक गूंज , एक गरज , एक अजीब-सी खलबली होती है और अस्पष्ट-सी आवाज़ें आपको चारों ओर से घेर लेती हैं। गांव के मेले की रेल-पेल में क्या आपको ऐसी ही अनुभूति नहीं होती ? उस मेले में जिसकी सारी भीड़ एक बड़े-से देव की शक्ल में ढल जाती है और यह देव शोर मचाता हुआ , क़हक़हे गुंजाता हुआ , खट-पट का कोलाहल करता हुआ मेले के बाज़ार में , उसकी भीड़ी-तंग गलियों में कंधे रगड़ता हुआ दिखाई देता है ? हो-हल्ला , डांट-डपट , मिमियाना-डकारना , चीख-गरज , सभी मिलकर एक अनमेल गुल-गपाड़े का रूप ले लेते हैं।

बैल, बोरियां, भूसा, बंजारे, मिट्टी के बर्तन, किसान-नारियां, रोटियां और टोपियां -- हर चीज़ लौ देती है, तड़क-भड़क लिये हुए है, बेतुकी है और हर चीज़ भागती-दौड़ती, ठेलती-पेलती दिखाई देती है। तरह-तरह की आवाज़ें एक-दूसरी पर हावी होती हैं, एक शब्द भी तो साफ़ सुनाई नहीं देता, शब्द घुल-मिलकर गड्ड-मड्ड हो जाते हैं, कुछ भी तो साफ़ तौर पर समझ में नहीं आता। सभी ओर बस पटापट हाथ मिलाये जाते हैं, सौदे तय होते हैं। धम की आवाज़ करती हुई कोई गाड़ी बैठ जाती है, टनकता-खनकता लोहे का कोई टुकड़ा ज़मीन पर गिरता है और तख़्ते फटाक-फटाक ज़मीन चूमते हैं। ऐसा घूम जाता है आपका सिर कि कुछ भी समझ में नहीं आता कि किधर मुड़ें, किधर घूमें।

हम जिस किसान से परिचित हो चुके हैं, वह अपनी काली भौंहोंवाली बेटी के साथ काफ़ी देर तक भीड़ को चीरकर अपना रास्ता बनाता हुआ बढ़ता गया। वह एक गाड़ी के क़रीब जाता, फिर दूसरी का माल जांचता और क़ीमतें पूछता। उसके दिल-दिमाग़ में चक्कर काट रही थीं दो चीज़ें – गेहूं की दस बोरियां और बूढ़ी घोड़ी, वह जिन्हें बेचने के लिये लाया था। उसकी बेटी के चेहरे पर यह बात साफ़ तौर पर झलक रही थी कि आटे और गेहूं की बोरियों के बीच इधर-उधर धकेले जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। उसका मन ललक रहा था उस तरफ़ जाने को, जहां छींट

की चादरों के नीचे लाल रेशमी फ़ीते, बालियां, टिन और तांबे की सलीबें और गंडे-तावीज़ बड़े सुन्दर ढंग से सजाकर रखे गये थे। मगर वह जिस जगह थी, वहां भी उसकी दिलचस्पी की बहुत-सी चीज़ें थीं। एक दृश्य ने तो उसका ध्यान ख़ास तौर पर अपनी तरफ़ खींचा। सौदा पटने के बाद एक बंजारे और किसान ने इतने ज़ोर से हाथ मिलाये कि दर्द के मारे दोनों की चीखें निकल गईं। नशे में धुत्त एक यहूदी ने एक औरत की पीठ पर दो कोड़े रसीद कर दिये। दो नारियां एक-दूसरी पर गालियां बरसा रही थीं। एक रूसी एक हाथ से अपने बकरे की दाढ़ी सहला रहा था और उसका दूसरा हाथ था... मगर इसी क्षण उसे महसूस हुआ कि किसी ने उसके ब्लाउज़ की कढ़ी हुई आस्तीन खींची है। वह घूमी और उसने सफ़ेद जाकेट पहने, चमकती आंखों वाले युवक को अपने सामने खड़े पाया। वह सिहर उठी। उसका दिल कुछ इस तरह धड़का जिस तरह वह किसी भी ख़ुशी या ग़म के वक़्त, पहले कभी नहीं धड़का था। एक अजीब-सी, बहुत सुखद और प्यारी-सी अनुभूति हुई उसे। अनबूझ-सी रही उसके लिये यह अनुभूति!

"डरो नहीं, मेरी प्यारी, डरो नहीं!" लड़की का हाथ अपने हाथ में लेते हुए युवक ने कहा। "मैं तुम्हारा दिल दुखानेवाली कोई बात नहीं कहूंगा!"

"शायद तुम ऐसी कोई बात नहीं कहोगे," लड़की ने मन ही मन सोचा, "मगर यह अजीब-सी बात है—शायद यह पाप हो! मैं जानती हूं कि ऐसा करना सही नहीं है, मगर अपना हाथ खींच लूं, इतनी हिम्मत भी तो नहीं मुझमें!"

किसान ने घूमकर देखा। वह अपनी बेटी से कुछ कहने ही को था कि उसे "गेहूं" शब्द सुनाई दिया। उसके लिये इस शब्द में जादुई आकर्षण था। वह पलक झपकते में गेहूं के उन दो व्यापारियों के पास जा पहुंचा, जो ऊंची आवाज़ में बातें कर रहे थे। किसी दूसरी चीज़ की सुधबुध ही न रही उसे!

३

देखते हो क्या ग़ज़ब का जवान है?
बहुत कम होंगे कि ऐसे आदमी
संसार में, वोद्का को इस तरह
से पी रहा मानो बीयर!

(कोत्ल्यारेव्स्की की रचना 'ईनिद' से)

"तो पड़ोसी, तुम्हारे ख़्याल में हमारा गेहूं अच्छे दामों नहीं बिकेगा?" एक व्यापारी ने पूछा। रंग-ढंग से वह शहरी लगता था और उसके गाढ़े के पतलून पर तारकोल के धब्बे लगे हुए थे।

"ख़्याल ही नहीं, यक़ीनी बात है," दूसरे ने जवाब दिया। वह जहां-तहां पैवन्द लगी नीली जाकेट पहने था और उसके माथे पर बड़ा-सा गुमटा था। "अगर अनाज का एक दाना भी बिक गया, तो मैं गले में फंदा डालकर इस तरह उस पेड़ से लटक जाऊंगा, जिस तरह क्रिसमस के पहले सासेज लटका करते हैं।"

"छोड़ो, बेकार की बातें न करो, पड़ोसी। हमारे सिवा कोई भी तो गेहूं लेकर मेले में नहीं आया है," गाढ़े के पतलून वाले ने प्रत्युत्तर में कहा।

"उड़ा लो मनमोदकों की दावत," हमारी रूपसी के पिता ने मन ही मन सोचा। उसने व्यापारियों का हर शब्द बहुत ध्यान से सुना था। "मैं भी दस बोरियां लाया हूं।"

"देखो, मामला यों है। अगर किसी चीज़ में शैतान की झलक नज़र आ जाये, तो किसी के हाथ-पल्ले भला पड़ ही क्या सकता है! वही कुछ जो एक कंगाल से मिल सकता है," गुमटे वाले व्यक्ति ने अर्थपूर्ण ढंग से कहा।

"क्या मतलब है तुम्हारा शैतान की झलक से?" गाढ़े के पतलून वाले व्यक्ति ने पूछा।

"सुना नहीं तुमने लोगों की ज़बान पर किस बात की चर्चा है?" गुमटे वाले व्यक्ति ने अपनी उदास-उदास आंखों की कनखियों से उसकी तरफ़ देखा।

"क्या चर्चा है?"

"क्या चर्चा है? लो सुनो। ज़िला न्यायाधीश ने – भगवान करे कि उसे कुलीनों की शराब की बूंद भी कभी न मिले – मेले के लिये ऐसी मनहूस जगह दी है कि यहां तुम जान भी दे दो तो भी अनाज का एक दाना नहीं बेच पाओगे। पहाड़ी के दामन में वह टूटी-फूटी खत्ती देख रहे न?" (इस बात पर हमारे कौतूहली किसान के कान खड़े हुए और वह उनसे अधिक सट गया।) "उस खत्ती में सभी तरह की शैतानी हरकतें होती रहती हैं। इस जगह एक भी तो ऐसा मेला नहीं हुआ कि जिस में गड़बड़ न हुई हो! ज़िला अदालत का मुंशी पिछली रात उसके क़रीब से गुज़रा और अचानक एक सूअर की थूथनी खिड़की से बाहर निकल आई। इतने ज़ोर से वह थूथनी खरखराई कि मुंशी सिर से पांव तक कांप गया। यक़ीन मान, लाल कुरती फिर दिखाई देगी।"

"यह क्या बला है, यह लाल कुरती?"

हमारा किसान कान लगाये था, ये शब्द सुनकर उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसने घबराकर इधर-उधर देखा और पाया कि उसकी बेटी और वह नौजवान एक-दूसरे की कमर में बाहें डाले खड़े हैं। वे दुनिया भर की सभी तरह की कुरतियों से बेख़बर अपनी ही दुनिया में खोये हुए धीरे-धीरे प्यार की बातें कर रहे थे। यह देखकर किसान को डर से निजात मिली और उसकी जान में जान आई।

"भई वाह पड़ोसी! लगता है कि तुम लड़की को अपने

प्रेमपाश में बांधने के फ़न में ख़ूब माहिर हो! इधर अपना यह हाल था कि शादी होने के तीन दिन बाद कहीं इस बात की समझ आई थी कि अपनी बेचारी ख़्वेस्का (भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे) को गले कैसे लगाना चाहिए। सो भी मेरे एक दोस्त ने, मेरी शादी के प्रबन्धक ने, जुगत बताई थी।"

युवक ने अनुमान लगा लिया कि उसकी प्रेयसी का पिता कोई बहुत होशियार, बहुत समझदार आदमी नहीं है। उसने उसे बस में करने की तरक़ीब सोच निकाली है।

"भलेमानस, शायद आप मुझे नहीं जानते। मगर मैं तो आपको पहली ही नज़र में पहचान गया।"

"हो सकता है।"

"हां, और अगर चाहते हैं तो मैं आपको आपका नाम, कुलनाम और आपके बारे में हर चीज़ बता सकता हूं – आपका नाम है सोलोपी चेरेवीक।"

"सोलह आने सही – सोलोपी चेरेवीक ही है मेरा नाम।"

"अच्छा तो अब ज़रा ग़ौर से देखिये मुझे अभी भी क्या नहीं पहचान पाये?"

"नहीं, अभी भी नहीं। बुरा न मानना, मगर अपनी उम्र में मैंने तरह-तरह के अनगिनत चेहरे देखे हैं। कम्बख़्त इतनी सूरतें भला कैसे याद रह सकती हैं?"

"बहुत अफ़सोस की बात है कि आपको गोलोपूपेन्को के बेटे की भी याद नहीं।"

"अरे, तो तुम ओख़ीम के बेटे हो?"

"उसका नहीं तो क्या किसी भूत-प्रेत का बेटा हूं।"

अब क्या था दोनों ने अपनी टोपियां उतारीं और गले मिले। गोलोपूपेन्को का बेटा फ़ौरन ताड़ गया कि अब मौक़ा हाथ से नहीं जाने देना चाहिये, गर्म-गर्म लोहे पर चोट पड़ ही जानी चाहिये।

"देखिये बात यह है कि हम दोनों में प्यार हो गया है, सो भी ऐसा कि हम शेष जीवन साथ-साथ बिताने को राज़ी हैं।"

"हां तो कैसी रही, परास्का," हंसते और अपनी बेटी को सम्बोधित करते हुए चेरेवीक ने कहा। "शायद यह ठीक ही होगा कि तुम और यह – जैसे कि कहते हैं – साथ-साथ ही दाना-दुनका चुगोगे! तो मिलाओ हाथ, मामला तय। इसी ख़ुशी में अब तुम्हारी तरफ़ से बोतल खुल जाये!"

वे तीनों मेले के मशहूर शराबख़ाने में जा पहुंचे। इसकी मालकिन एक यहूदिन थी। वहां तरह-तरह की बोतलें, सुराहियां और जाम सजे हुए थे।

"बहुत तेज़ आदमी हो तुम! हमें पसन्द हो," हल्के सरूर में आये हुए चेरेवीक ने अपने भावी दामाद को शराब से भरे कुल्हड़ को पलक झपकाये बिना एक ही सांस में गले के नीचे उतारते हुए देखकर कहा। नौजवान ने शराब पीने के बाद इस ज़ोर से कुल्हड़ को ज़मीन पर दे मारा कि वह चूर-चूर

हो गया। "क्यों क्या ख़याल है परास्का? बढ़िया पति ढूंढ़ दिया है न मैंने तुम्हें? देखो तो वह क्या ठाठ से पीता है!"

बेटी को साथ लिये चेरेवीक हंसता और लड़खड़ाता हुआ अपनी गाड़ी की तरफ़ और हमारा युवक उन दूकानों की तरफ़ बढ़ा, जहां बढ़िया चीज़ें बिक रही थीं, जहां पोल्तावा प्रान्त के दो प्रसिद्ध नगरों – गाद्याच और मीरगोरोद – के सौदागर भी अपना माल लेकर आये हुए थे। वह अपने ससुर के लिये तांबे से मढ़ी हुई लकड़ी की सर्वश्रेष्ठ पाइप, फूलदार लाल रूमाल और टोपी और उन सबके लिये भी जिनका हक़ बनता था, विवाह के उपहार ख़रीदना चाहता था।

४

मर्द जो चाहे एक चीज़
यदि औरत चाहे दूसरी
नहीं समझना यह तो मुश्किल
बात रहेगी किसकी!

(कोत्ल्यारेव्स्की)

"अरी भागवान, मैंने अपनी बेटी के लिये वर खोज लिया है!"

"वर की खोज करने का भी तुमने ख़ूब ही वक़्त ढूंढ़ा है! तुम बेवक़ूफ़ हो – एकदम बेवक़ूफ़! छठी के दिन यही

लिखा गया था तुम्हारी क़िस्मत में! तुम उम्र भर ऐसे ही रहोगे! किसने भला देखा-सुना है किसी भले आदमी को ऐसे मौक़ों पर वरों की तलाश में दौड़ते-भागते! गेहूं बेचकर पैसे खड़े करने की बात सोचते तो कहीं बेहतर होता। ख़ूब बढ़िया होगा वह नौजवान भी! ज़रूर भिखमंगों और कंगालों का सिरताज होगा!"

"अरे क़तई नहीं! देखते ही बनता है उस बांके-छैले को! उसकी अकेली जाकेट ही तुम्हारे हरे ब्लाउज़ और लाल बूटों से ज्यादा क़ीमत की है। और फिर वह किस अन्दाज़ से वोद्का पीता है! मुझपर और तुमपर भी शैतान की मार पड़े अगर मैंने किसी लौंडे को पलक झपके बिना शराब का पूरा कुल्हड़ ख़ाली करते देखा हो!"

"हां समझ में आया, वह शराबी और आवारा है, इसी लिये तुम्हें पसन्द आया है। मैं शर्त लगाने को तैयार हूं, यह ज़रूर वही शैतान का चर्ख़ा होगा जिसने पुल पर हमारी नाक में दम कर दिया था। कम्बख़्त अभी तक मेरे हत्थे नहीं चढ़ा, वरना अक़्ल ठिकाने कर देती।"

"ख़ीव्र्या, मान लो कि यह वही छोकरा है। मगर शैतान क्यों है वह?"

"वह शैतान क्यों है? सुनो तो इस सिरफिरे खूसट की बात! जब हमारी गाड़ी पनचक्कियों के पास से गुज़र रही थी, तब क्या तुम्हारी आंखें फूटी हुई थीं? तुम्हारी गली-सड़ी

नाक के सामने ही तुम्हारी बीवी की बेइज़्ज़ती की जाये और तुम्हारे कानों पर जूं तक न रेंगे!"

"तुम चाहे कुछ भी कहो, मुझे तो वह फिर भी भला आदमी लगता है! बस इतनी ही तो बुराई की थी उसने कि तुम्हारे बदसूरत चेहरे पर गोबर मल दिया था।"

"अहा! आज तो तुम बातों में कान काट रहे हो! यह किस चीज़ का रंग चढ़ गया है आज तुम पर? एक कौड़ी का माल बेचे बिना ही एक-दो जाम चढ़ा गये हो!"

अब चेरेवीक को भी होश आया कि वह हद से बहुत आगे बढ़ गया है। फ़ौरन उसने अपने हाथ सिर पर रख लिये। उसे यक़ीन था कि ग़ुस्से में आई हुई उसकी बीवी उसके सिर पर झपटेगी और बाल बीवी के पंजों में फंसे नज़र आयेंगे।

"ख़ाना ख़राब! लो भाड़ में चली गई शादी!" बीवी के तेवर देखकर घुटने टेकते हुए उसने मन ही मन सोचा। "अकारण ही एक भले आदमी को इनकार करना पड़ेगा। हे दीनबन्धु, कृपालु भगवान, क्यों तुमने मुझ पापी को इस संकट में डाला है? वैसे ही क्या कम मुसीबतें हैं तुम्हारी इस दुनिया में, इस पर बीवियों को बनाना भी क्या ज़रूरी था!"

५

> ओ चिनार, ओ चिनार क्यों उदास ?
> अभी हरे-हरे हो तुम
> ओ कज़्ज़ाक, ओ कज़्ज़ाक क्यों निराश ?
> जवान हो, जवान हो !
>
> (उक्रइनी गीत)

सफ़ेद जाकेट वाला नौजवान अपनी गाड़ी की बग़ल में बैठा था। उसके क़रीब से लोगों की शोर मचाती भीड़ गुज़र रही थी और वह अपने ही ख़्यालों में लुटा-खोया-सा उस भीड़ को देख रहा था। दिन भर आग बरसाने के बाद सूरज अपना प्रखर किरण-जाल समेटता जा रहा था। दिन की रोशनी, अत्यधिक उज्ज्वल प्रकाश और दहकते अंगार में बदल गई थी। सफ़ेद तम्बुओं और ख़ेमों की छतें चकाचौंध करते प्रकाश में डूब गई थीं। इस प्रकाश में हल्का गुलाबी रंग घुला-मिला हुआ था। खिड़कियों की चौखटों के जो ढेर के ढेर बिक्री के लिये जमा थे, अब उनके शीशे ख़ूब ही चमक रहे थे; शराबख़ाने की मेज़ों पर रखे हुए हरे प्याले और बोतलें तो जैसे आग की लपटें बन गयी थीं; ख़रबूज़ों-तरबूज़ों और कद्दुओं के टीले ऐसे नज़र आते थे मानो सोने और सुरमई तांबे में ढाले गये हों। बातों का बाज़ार अब कम गर्म था और व्यापारियों, किसानों और बंजारों की थकी-हारी ज़बानें

धीरे-धीरे हिल रही थीं। कहीं-कहीं बत्तियां भी जल उठी थीं और ख़ामोश गलियों में पकते हुए खानों की गन्ध फैल रही थी।

"किस ग़म में घुले जा रहे हो, ग्रित्स्को?" हमारे जवान दोस्त के कंधे को थपथपाकर एक लम्बे-तड़ंगे बंजारे ने ऊंची आवाज़ में पूछा। "कहो, बीस रूबलों में बेचते हो अपने बैल मेरे हाथ?"

"जब देखो, तुम्हें तो बस बैलों की ही सनक सवार रहती है। तुम बंजारे तो हमेशा एक ही फेर में रहते हो—जैसे भी हो मुनाफ़े से हाथ रंगे जायें—भले लोगों को छला जाये, ठगा जाये!"

"अरे, तुम तो बिल्कुल जले-भुने बैठे हो! शायद किसी लड़की को वचन दे बैठे हो? इसी लिये परेशान हो क्या?"

"नहीं, इस क़िस्म की परेशानी का शिकार होना मैं नहीं जानता। मैं अपनी बात का धनी हूं—जो तय कर लिया, सो कर लिया। मगर लगता है कि बूढ़े चेरेवीक का न तो कोई दीन है, न ईमान—ज़बान देकर मुकर गया। पर ख़ैर उसे दोष देना भी बेकार होगा। वह तो निरा काठ का उल्लू है। यह तो उस बूढ़ी चुड़ैल की ही करतूत है, जिसकी हमने आज पुल पर ताली पीटी थी। अगर मैं कोई राजा-महाराजा या बड़ा जागीरदार होता, तो अपनी बीवियों के इशारों पर नाचनेवाले सभी मूर्खों को फांसी के तख़्ते पर चढ़ा देता।"

"अगर हम चेरेवीक से तुम्हें परास्का दिलवा दें, तो बैल बीस रूबलों में दे दोगे?"

ग्रित्स्को ने आंखें फाड़-फाड़कर बंजारे को घूरा। कुछ घृणित, नीचतापूर्ण और घटियापन की, मगर साथ ही एक अजीब-से अभिमान की झलक थी बंजारे के सांवले चेहरे पर। उसे देखनेवाला हर आदमी पहली नज़र में ही यह भांप सकता था कि वह अजीब-सी आत्मा गुणों की गुथली है, यद्यपि इस धरती पर उन गुणों का सिर्फ़ एक ही इनाम हो सकता है—फांसी। नाक और नुकीली ठोड़ी के बीच पूरी तरह धंसे हुए गालोंवाले चेहरे पर एक अमिट-सी मुस्कान—दूसरों का उपहास करती हुई मुस्कान—अंकित होकर रह गई थी। उसकी छोटी-छोटी आंखें आग की लपटों की तरह चमकती थीं। उसके चेहरे पर हेरी-फेरी, जोड़-तोड़ और सौदेबाज़ी की बिजलियां-सी लगातार कौंध रही थीं। उसका पूरा हुलिया, उसकी अजीबोग़रीब पोशाक के साथ ख़ूब मेल खाता था। वह गहरे कत्थई रंग का ऐसा कोट पहने था, जो लगता था कि छूते ही टुकड़े-टुकड़े होकर ज़मीन पर जा गिरेगा। उसके काले बालों की लम्बी-लम्बी लटें कंधों को छू रही थीं। वह नंगे संवलाये पैरों पर बूट चढ़ाये था। उसकी हर चीज़ मानो उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी।

"तुम बीस की बात करते हो मैं तुम्हें पन्द्रह रूबलों में दे दूंगा अपने बैल! पर देखो, धोखा नहीं देना मुझे!"

नौजवान ने जवाब दिया। बंजारे की थाह लेती हुई उसकी नज़रें उसे एकटक देखती रहीं।

"पन्द्रह? तो मामला पक्का! देखो भूल नहीं जाना–पन्द्रह रूबल में! ये रहे पांच रूबल पेशगी!"

"पर यदि तुमने धोखा दिया तो?"

"तो पेशगी पांच रूबल तुम्हारे!"

"ठीक है! तो मिलाओ हाथ, सौदा पक्का!"

"बिल्कुल पक्का!"

६

हे भगवान बचाओ हमें! आता
है मेरा पति, आया कि आया,
आते ही तोड़ेगा पसलियां मेरी।
हां, पान ख़ोमा, बचकर तो तुम
भी न निकल पाओगे!

(एक उक्रइनी प्रहसन से)

"इधर से आइये, अफ़ानासी इवानोविच! यहां से बाड़ नीची है। अपना पैर ऊपर रखिये, डरिये नहीं। वह बूढ़ा खूसट अपने लंगोटिया यार के साथ रात भर गाड़ी की रखवाली करने के लिये उसके नीचे सोयेगा ताकि रूसी किसी माल पर हाथ साफ़ न कर दें।"

इस तरह चेरेवीक की उस भयंकर बीवी ने पादरी के बेटे को बढ़ावा दिया, जो डरा-सहमा-सा बाड़ से चिपककर खड़ा था। वह बाड़ के ऊपर चढ़ा और वहां कुछ देर तक एक भूत-प्रेत की तरह हिचकता-झिझकता हुआ यह देखता रहा कि उसके कूदने के लिये कौनसी जगह सबसे अच्छी रहेगी। आख़िर वह धम से झाड़ियों के बीच जा गिरा।

"हे भगवान! कहीं कोई चोट तो नहीं आ गई आपको? आपकी गर्दन तो ठीक-ठाक है न?" चिन्तित ख़ीव्र्या ने पूछा।

"शी! मैं ठीक-ठाक हूं, बिल्कुल ठीक हूं, प्यारी ख़ावरोन्या निकीफ़ोरोव्ना," खड़ा होता हुआ पादरी का बेटा परेशान होकर फुसफुसाया। "मैं बिल्कुल सही-सलामत हूं, सिर्फ़ उस कम्बख़्त बिच्छू बूटी ने, जैसा कि स्वर्गीय बड़े पादरी कहा करते थे, सांप की तरह डंक मार दिया है।"

"आओ घर के भीतर चलें, कोई नहीं है वहां। मुझे तो फ़िक्र हो चली थी कि कहीं आपकी तबीयत तो कुछ गड़बड़ नहीं हो गई, पेट में तो दर्द नहीं हो गया आपके – बहुत देर जो कर दी थी आपने आने में। क्या हाल-चाल है आपका? सुनती हूं कि इस बार आपके पूज्य पिता की क़िस्मत ने ख़ूब ज़ोर मारा है!"

"कुछ ख़ास तो नहीं, ख़ावरोन्या निकीफ़ोरोव्ना। पूरे लेंट के दौरान पिता जी को पन्द्रह बोरे गेहूं के, चार बाजरे के और एक सौ नान मिले हैं। रही मुर्ग़ियों की बात तो उनकी

संख्या तो पचास भी नहीं बैठती और अंडे तो अधिकतर गले-सड़े थे। मगर असली ज़ायकेदार उपहार तो सिर्फ़ आपसे ही मिल सकता है, ख़ावरोन्या निकीफ़ोरोव्ना!" पादरी का बेटा प्यारभरी नज़र से देखता और उसके क़रीब होता हुआ कहता गया।

"अफ़ानासी इवानोविच, यह हाज़िर है मेरी भेंट!" मेज़ पर कुछ कटोरे रखते हुए उसने बड़े नाज़-नख़रे से अपने ब्लाउज़ के बटन इस तरह बन्द किये मानो अचानक अपने आप खुल गये हों। "पनीर के पकवान, गुलगुले, नान और मीठी रोटियां!"

"मैं शर्त लगाकर कह सकता हूं कि अपने हाथ में बेहद कमाल रखनेवाली हव्वा की किसी बेटी ने ही ये लज़ीज़ चीज़ें बनाई हैं!" एक हाथ मीठी रोटियों पर साफ़ करते और दूसरा गुलगुलों की ओर बढ़ाते हुए पादरी के बेटे ने कहा। "वैसे सच बात तो यह है, ख़ावरोन्या निकीफ़ोरोव्ना, आपसे तो इन रोटियों और गुलगुलों से कहीं ज़्यादा मीठा उपहार पाने को मेरा दिल बेक़रार है।"

"अफ़ानासी इवानोविच, मैं तो सचमुच समझी नहीं कि और कौनसा पकवान आपको पसन्द है!" भारी-भरकम सुन्दरी ने बनते हुए जवाब दिया।

"वह है आपका प्यार, ख़ावरोन्या निकीफ़ोरोव्ना! क्या ख़ूब हैं आप, कोई सानी नहीं आपका!" एक हाथ में

गुलगुला लिये हुए और दूसरा ख़ाली हाथ उसकी मांसल कमर में डालते हुए पादरी का बेटा फुसफुसाया।

"भगवान ही जाने कि आप क्या कहना चाहते हैं, अफ़ानासी इवानोविच!" शर्म से आंखें नीची करते हुए ख़ीव्र्या ने कहा। "कोई आश्चर्य नहीं कि अब आप मुझे चूमने की कोशिश करेंगे।"

"जहां तक इस बात का सम्बन्ध है, तो मैं यह बताये बिना नहीं रह सकता," पादरी का बेटा कहता गया, "कि मैं अभी धार्मिक पाठशाला में ही पढ़ता था–मुझे वह सब इस तरह याद है जैसे कि आज ही की बात हो..."

वह अपनी बात पूरी न कर पाया था कि बाहर कुत्तों का भूंकना और दरवाज़े पर खटखट सुनाई दी। ख़ीव्र्या जल्दी से बाहर गई और लौटी तो चेहरे का रंग उड़ा हुआ था।

"अफ़ानासी इवानोविच, हम मारे गये। बहुत-से लोग हैं दरवाज़ा खटखटानेवाले। मेरे ख़्याल में मुझे तो त्सिबूल्या की आवाज़ भी सुनाई दी है।"

गुलगुला पादरी के बेटे के गले में अटककर रह गया। डर के मारे उसकी आंखें इस तरह बाहर को निकली पड़ रही थीं, मानो कोई प्रेतात्मा अचानक उसके सामने आकर खड़ी हो गई हो।

"यहां, ऊपर चढ़ जाओ!" भयभीत ख़ीव्र्या ने चीख़ते हुए उन तख़्तों की तरफ़ इशारा किया, जो छत के नीचे

लगे हुए थे और जहां घर की सभी अगड़म-बगड़म चीज़ें पड़ी हुई थीं।

ख़तरे ने हमारे सूरमा को हिम्मत दी। वह तन्दूर पर चढ़ा और फिर सावधानी से तख़्तों पर पहुंचा। ख़ीव्र्या हांफती हुई दरवाज़ा खोलने के लिये भागी, क्योंकि बेसब्री को ज़ाहिर करती हुई भीड़ की खटखट अधिकाधिक ऊंची होती जा रही थी।

७

अजी सरकार, बड़े-बड़े करिश्मे
होते हैं यहां!

(एक उक्रइनी प्रहसन से)

एक अजीब घटना घट गई थी मेले में! यह अफ़वाह फैल गई थी कि माल-सामान में कहीं लाल कुरती भी नज़र आई थी। रोटियां बेचने वाली एक बुढ़िया को यह वहम-सा हुआ कि उसने शैतान को एक सूअर के रूप में देखा है। वह गाड़ियों में कुछ खोजता-टटोलता फिर रहा था। अब तक जहां अमन-चैन की बंसी बजती थी, वहां यह अफ़वाह जंगल की आग की तरह फैल गई। इस ख़बर पर विश्वास न करना हर आदमी गुनाह समझता था, यद्यपि सच बात यह

थी कि अफ़वाह फैलानेवाली बुढ़िया की दूकान शराबख़ाने की बग़ल में थी। वह पड़ोसी के माल पर हाथ साफ़ करती रहती थी और कमर झुकाकर चलती थी। इस अफ़वाह में एक क़िस्सा और घुलमिल गया और इसमें अब तक काफ़ी मिर्च-मसाला लग चुका था। यह क़िस्सा था ज़िला अदालत के मुंशी द्वारा टूटी-फूटी खत्ती में देखे गये अजूबे के बारे में। इसलिये जैसे ही रात हुई लोग एक-दूसरे की बग़ल में सिमटकर बैठ गये। उनके मन का चैन लुट गया और डर के मारे सभी की पलकों से नींद हवा हो गई। जिनके दिल बहुत ही कमज़ोर थे और जिन्होंने रात गुज़ारने के लिये किसी झोंपड़े में जगह हासिल कर ली थी, वे अब अपने घरों की ओर भाग लिये। अपनी बेटी के साथ चेरेवीक और उनका मित्र त्सिबूल्या भी इन्हीं में थे। कुछ और यार-दोस्त भी उनके साथ हो लिये। इन्हीं लोगों की भीड़ ने दरवाज़े को ज़ोर से खटखटाकर ख़ीव्र्या का दम निकाल दिया था। त्सिबूल्या तो नशे में धुत्त था। दो बार अहाते का चक्कर काटने के बाद ही वह घर ढूंढ़ पाया था। उसके मेहमान भी रंग में थे और वे मेज़बान के पहले ही धड़ाधड़ घर में घुस गये। वे घर के हर कोने में ताक-झांक करने और ऊधम मचाने लगे। चेरेवीक की बीवी का यह हाल था कि मानो कांटों पर बैठी हो।

"क्या बात है, भाभी?" त्सिबूल्या ने भीतर आने पर पूछा। "क्या बुख़ार की झुरझुरी आ रही है?"

"हां, मेरी तबीयत अच्छी नहीं है," छिपे-छिपे और बेचैनी से ऊपर को देखते हुए ख़ीव्र्या ने जवाब दिया।

"अरे बीवी, निकालो तो गाड़ी में से बोतल!" त्सिबूल्या ने कहा। "इन भले लोगों के साथ मिलकर पी डालेंगे। उन कम्बख़्त औरतों ने तो ऐसा डराया कि कहते नहीं बनता। शर्म आती है अपनी कमज़ोरी मानते हुए। हां दोस्तो, सच तो यह है कि हमारे यहां आने में कोई तुक नहीं थी," मिट्टी के कुल्हड़ से बड़ा-सा घूंट गले के नीचे उतारते हुए वह कहता गया। "मैं नई टोपी की शर्त लगाकर कहता हूं कि उन औरतों ने हम मर्दों का उल्लू बनाने, हमपर हंसने के लिये ही ऐसा किया है। मान लो कि शैतान था – होगा शैतान। लानत भेजो उसपर! अगर वह अभी, इस वक़्त ही मेरे सामने आ जाये, तो मैं क्या करूंगा – यही कि उसको मुंह चिढ़ा दूंगा। थूक देना मेरे मुंह पर अगर ऐसा न करूं।"

"तो तब तुम्हारा चेहरा क्यों पीला पड़ गया था?" मेहमानों में से एक चिल्लाया। दूसरों की तुलना में वह लम्बा था और हमेशा अपने को बड़ा तीसमारखां ज़ाहिर करने की कोशिश करता था।

"मेरा चेहरा पीला पड़ गया था? ज़रूर सपना देखा होगा तुमने!"

मेहमान हंस दिये। डींग हांकनेवाले हमारे सूरमा के चेहरे पर सन्तोष की मुस्कान झलक उठी।

"उसका चेहरा भला पीला पड़ भी सकता है!" किसी दूसरे ने बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ाया। "पोस्त के फूल की तरह तो लाल हैं इसके गाल। वह त्सिबूल्या (प्याज़) नहीं, चुकन्दर है—बल्कि यों कहना बेहतर होगा कि ख़ुद लाल कुरती है, जिसने सभी लोगों का बुरी तरह दम ख़ुश्क कर रखा है।"

बोतल जैसे-जैसे मेज़ के गिर्द घूमी, मेहमान रंग में आते गये। लाल कुरती चेरेवीक को अभी भी परेशान किये हुए थी। उसके मन में जिज्ञासा बनी हुई थी लाल कुरती के बारे में जानकारी हासिल करने की। चुनांचे उसने अपने दोस्त से अनुरोध करते हुए कहा—

"देखो यार, मुसीबत की जड़ उस लाल कुरती के बारे में लोगों से पूछ-पूछकर मेरी ज़बान थक गई है। मगर क्या मजाल कि कोई सीधे-सीधे जवाब दे!"

"यह रात के वक़्त सुनाने का क़िस्सा नहीं है। पर ख़ैर क्योंकि तुम चाहते हो और यहां बैठे हुए दोस्त भी बेक़रार नज़र आते हैं, इसलिये सुना देता हूं। तो लो सुनो!"

इतना कहकर त्सिबूल्या ने कंधे खुजाये, कोट के छोर से मुंह पोंछा, दोनों हाथ मेज़ पर टिकाये और क़िस्सा सुनाना शुरू किया।

"हुआ यह कि एक बार एक शैतान को जहन्नुम से निकाल बाहर किया गया। किस लिये, यह भगवान जाने!"

"मगर कैसे?" चेरेवीक ने टोका। "शैतान को जहन्नुम से निकाल दिया जाये, यह हो ही कैसे सकता है?"

"यह मैं नहीं जानता मेरे दोस्त, मगर निकाल दिया गया था—ठीक उसी तरह जैसे कि कोई आदमी कुत्ते को घर से निकाल बाहर करता है। शायद उसके दिमाग़ में कोई नेकी करने की धुन सवार हो गई थी और इसलिये उन्होंने उसे धता बता दिया। बेचारे शैतान को घर की याद ने, जहन्नुम के ख़्याल ने, इतना बेचैन किया कि जीना दूभर हो गया। आख़िर क्या करता बेचारा। शराब के जामों में अपना ग़म डुबोने लगा। पहाड़ी के दामन में जो टूटी-फूटी खत्ती पड़ी है, वहां उसने अड्डा जमाया। कोई भी भला आदमी अपने ऊपर सलीब बनाये बिना अब वहां से नहीं गुज़रता। शैतान को पीने की ऐसी लत पड़ी कि कोई छोकरा भी क्या ऐसा पियक्कड़ होगा। जब देखो, तभी वह शराबख़ाने में हाज़िर रहता।"

यहां फिर उसे टोकते हुए चेरेवीक ने कड़ाई से पूछा—

"यह तुम क्या कहे जा रहे हो? शैतान को भला कौन अपने शराबख़ाने में घुसने देगा? भगवान भला करे हम सब का, उसके तो सींग और जानवरों के से पंजे होते हैं। क्यों होते हैं न?"

"यह तो सही है, मगर उसने टोपी ओढ़ ली थी और दस्ताने पहन लिये थे। कौन पहचान सकता था उसे? तो

ख़ैर, उसका शराब पीने का यह सिलसिला जारी रहा, हत्ता कि आख़िरी कौड़ी चुक गई। बहुत दिनों तक उधार पर काम चलता रहा, पर आख़िर जवाब मिल गया। सोरोचिनत्सी के मेले में उन दिनों जो यहूदी वोद्का बेचता था, शैतान को असली क़ीमत की एक तिहाई पर अपनी लाल कुरती उसके पास गिरवी रखनी पड़ी। कुरती गिरवी रखते हुए उसने यहूदी से कहा—'देखो यहूदी, एक बरस के अन्दर मैं अपनी कुरती छुड़ाने आऊंगा। सम्भालकर रखना इसे।' बस जी ग़ायब हो गया, उसका न कोई अता था न पता। यहूदी ने उलट-पलटकर कुरती को ख़ूब ध्यान से देखा। कपड़ा ऐसा बढ़िया था कि मीरगोरोद में भी न मिले। लाल रंग में वह चमक थी कि आंख टिकी की टिकी रह जाये। यहूदी को एक बरस तो बहुत लम्बा अर्सा लगा। उसने सिर खुजाते हुए कुछ सोचा-विचारा और आख़िर कुरती बेच डालने का इरादा बना लिया। एक भला-सा आदमी उधर से गुज़रा। यहूदी ने उसके हाथ कुरती बेच दी और लगभग पचास रूबल बटोर लिये। यहूदी को शैतान के लौटने की मियाद का क़तई ख़्याल न रहा। मगर अचानक एक शाम को एक आदमी उसके सामने आ खड़ा हुआ: 'यहूदी, लाओ मेरी कुरती!' यहूदी उसे देखते ही पहचान न पाया। ग़ौर से देखने पर वह पहचान गया और तब उसने ऐसे ज़ाहिर किया कि जैसे उसे पहले कभी देखा ही न हो। 'कौनसी कुरती? कोई

कुरती-वुरती नहीं मेरे पास तुम्हारी। कुछ नहीं जानता मैं तुम्हारी कुरती के बारे में!' शैतान चुपचाप वहां से चला गया। रात हुई तो यहूदी ने अपने कमरे को भीतर से ताला लगाया, तिजोरियों से रुपये निकालकर गिने, कंधों पर एक चादर डाली और यहूदियों के ढंग से भगवान को याद करने लगा। अचानक उसने सरसराहट-सी सुनी। उसने नज़र ऊपर उठाई—हर खिड़की में से सूअर की थूथनी अन्दर झांकती दिखाई दी..."

ठीक इसी वक़्त सूअर की खरखराहट से मिलती-जुलती एक अस्पष्ट-सी आवाज़ सुनाई दी। सभी के चेहरों का रंग फक हो गया। त्सिबूल्या के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक उठीं।

"यह क्या था?" सहमा हुआ चेरेवीक चिल्लाया।

"कुछ भी नहीं," सिर से पांव तक कांपते हुए त्सिबूल्या ने जवाब दिया।

"हूं!" एक मेहमान ने हुंकारा भरा।

"तुमने कुछ कहा क्या?"

"नहीं तो!"

"कौन खुरखुराया था?"

"भगवान जाने कि क्यों हम लोगों का दम ख़ुश्क हुआ जा रहा है! कोई भी तो नहीं यहां हमारे सिवा!"

उन्होंने सहमते हुए इधर-उधर नज़र दौड़ाई और घर का

कोना-कोना ढूंढ़ने-छानने लगे। ख़ीव्र्या की अब यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं।

"तुम मर्द नहीं, औरतें हो औरतें!" उसने ऊंची आवाज़ में कहा। "कज़्ज़ाक होने का दम भरते हो! चूड़ियां पहनकर बैठ जाना चाहिये तुम्हें तो! हो सकता है किसी ने... या किसी की बेंच चरचरा दी हो। और तुम लोग हो कि डर के मारे इधर-उधर भागने लगे हो, पागलों की तरह!"

हमारे सूरमाओं पर घड़ों पानी पड़ गया। उन्होंने हिम्मत बांधी। त्सिबूल्या ने शराब का बड़ा-सा घूंट पिया और अपनी कहानी आगे बढ़ाई –

"यहूदी दहशत से बेहोश हो गया। तभी बांस जैसी लम्बी-लम्बी टांगोंवाले सूअर खिड़कियों से भीतर कूद आये। कोड़े लगा-लगाकर वे यहूदी को होश में ले आये। वह इन तख़्तों से भी ऊंचा-ऊंचा उछला। यहूदी उनके क़दमों पर गिर पड़ा। उसने अपना सारा कुसूर मान लिया। मगर अब सवाल यह था कि कुरती कैसे लौटाई जाती। कुरती ख़रीदनेवाले उस भले आदमी को रास्ते में एक बंजारे ने लूट लिया। बंजारे ने उसे एक औरत के हाथ बेच दिया। यह औरत उसे फिर सोरोच्चिनत्सी के मेले में ले आई। मगर इसके बाद इस औरत से अब कोई सामान ही नहीं ख़रीदता था। औरत अजीब चक्कर में पड़ी। आख़िर बात उसकी समझ में आई। ज़रूर

यह लाल कुरती ही मामले की तह में है। इसी लिये तो जब उसने उसे पहना था, तो उसका दम घुटने लगा था। औरत ने न सोचा, न विचारा, कुरती उठाकर आग में झोंक दी। मगर वह ठहरी शैतानी चीज़, जले तो कैसे! 'यह शैतान का दिया हुआ तोहफ़ा है!' उसने सोचा। वह जाकर उसे एक किसान की गाड़ी में ठोंस आई। किसान मेले में मक्खन बेचने आया था। वह बुद्धू बड़ा ख़ुश हुआ। मगर अब कोई उससे मक्खन ही न ख़रीदे। 'ज़रूर किसी दुष्ट ने यह कुरती मेरे गले मढ़ दी है।' उसने आव देखा न ताव, कुल्हाड़ी ली और कुरती के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मगर उसके देखते ही देखते सभी टुकड़े फिर से जुड़ गये और कुरती फिर तैयार हो गई। उसने अपने ऊपर सलीब बनाई और फिर कुल्हाड़ी चलाई। कुरती के टुकड़ों को जहां-तहां फेंककर वह वहां से चलता बना। तभी से शैतान सूअर की सूरत बनाकर मेले में आता है, खुरखुराता और अपनी कुरती के टुकड़े इकट्ठे करता हुआ पूरे मेले का चक्कर लगाया करता है। अब सुनने में आया है कि सिर्फ़ बाईं आस्तीन ही नहीं मिल रही है। लोग तभी से यहां आते हुए झिझकते हैं। दस बरस से यहां मेला नहीं लगा। मगर न जाने किस बुरी घड़ी में न्यायाधीश ..."

बाक़ी शब्द उसके होंठों पर जमकर ही रह गये...

खिड़की ज़ोर से खड़खड़ाई और शीशे छनछनाते हुए फ़र्श

पर आ गिरे। एक भयानक सूअर खिड़की में से भीतर झांकने लगा। वह अपनी आंखों को इस तरह घुमा रहा था मानो पूछ रहा हो—"ए भले लोगो, क्या कर रहे हो यहां बैठे हुए?"

८

कुत्ते की तरह टांगों में दुम दबाये,
काएन की तरह थर-थर कांपता जाये
नाक उसी नसवार बहाये।

(कोत्ल्यारेव्स्की की रचना 'ईनिद' से)

कमरे में बैठे हर आदमी की घिग्घी बंधी हुई थी। त्सिबूल्या का मुंह खुला था और वह पत्थर की निर्जीव मूर्त्ति जैसा दिख रहा था। उसकी आंखें बाहर को निकली पड़ रही थीं। उसकी फैली हुई उंगलियां हवा में जहां की तहां जमकर रह गई थीं। लम्बे-तड़ंगे सूरमा को डर ने ऐसे दबोचा कि ज़ोर से ऊपर को उछल पड़ा। वह तख़्तों से जा टकराया। तख़्ते अपनी जगह से खिसक गये और पादरी का बेटा धड़ाम से फ़र्श पर आ गिरा। "हाय! हाय! हाय!" किसी की बेबसी में चीख़ निकल गई। चीख़नेवाला बेंच पर ही ढेर हुआ जा रहा था, हाथ-पांव पटक रहा था। "बचाओ!" भेड़ की

९

सामने से ठीक वैसा, जैसे सभी लोग,
पीछे से भगवान की क़सम,
बिल्कुल ही शैतान!

(एक लोक-कथा से)

मेले की भीड़ में से एक आदमी रात भर के लिये बाहर खुले में ही आराम कर रहा था। वह झटपट उठकर बैठ गया।

"क्लास, सुना तुमने?" उसने कहा। "किसी ने हमारे क़रीब ही शैतान का नाम लिया है!"

"तो मुझे क्या?" उसके क़रीब ही सोये पड़े एक बंजारे ने अंगड़ाई लेकर खीझते हुए कहा। "मेरी बला से, वे चाहें तो जहन्नुम के सभी शैतानों का नाम ले सकते हैं!"

"मगर वह तो ऐसे चीख़ा है कि कोई उसका गला घोंट रहा हो!"

"नींद में तो कोई आदमी किसी तरह भी चीख़-चिल्ला सकता है!"

"हो सकता है! मगर हमें कम से कम देख तो लेना चाहिये। रोशनी करो!"

दूसरा बंजारा बड़बड़ाता हुआ उठा। उसने चिंगारियों की बौछार-सी कर दी जैसे कि बिजलियां कौंध रही हों। उसने

एक जलते हुए फीते पर फूंक मारी, शोला उठाया और हाथ में कागानेत्स (साधारण उक्रइनी दीपक, ठीकरे में भेड़-बकरी की चर्बी डाल कर इसे जलाया जाता है) लिये अपने सामने का रास्ता रोशन करता हुआ आगे बढ़ा।

"ठहरो! यहां कोई चीज़ पड़ी है! इधर दिखाओ रोशनी!"

इसी बीच अन्य बहुत-से लोग भी इनसे आ मिले।

"यह क्या है, व्लास?"

"दो आदमी लगते हैं—एक ऊपर, दूसरा नीचे। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि इनमें से शैतान कौनसा है!"

"अरे, ऊपर कौन है?"

"कोई औरत है!"

"बस तो ठीक है—वही शैतान है!"

सारी गली ठहाकों से गूंज गई।

"औरत सवार है मर्द पर! वह ख़ूब जानती है सवारी गांठना!" भीड़ में से किसी ने कहा।

"अरे यारो! यह देखो यह कैसी बढ़िया टोपी पहन रखी थी इस भले आदमी ने!" मिट्टी के प्याले का टूटा हुआ आधा भाग उठाते हुए एक व्यक्ति ने कहा। उसका आधा भाग अभी तक चेरेवीक के सिर पर था।

बढ़ते हुए शोर और ठहाकों से हमारे इन मुर्दों की चेतना लौटी। चेरेवीक और उसकी बीवी के दिलों में तो पहले से ही बेहद डर समाया हुआ था। वे अब सहमे सहमे-से बंजारों

के सांवले चेहरों को घूरने लगे। मद्धिम और फड़फड़ाती रोशनी में ऐसा लग रहा था मानो पाताल के जंगली बौनों का एक दल निकलकर सामने आ गया है। वे पाताल की भारी-भरकम भाप और अन्तहीन रात के अंधेरे में लिपटे हुए से नज़र आ रहे थे।

१०

हट तेरे की
दूर हो, दूर हो
ओ शैतानी सूरत!

(एक उक्रइनी प्रहसन से)

सोरोचिनत्सी के मेले की आंख खोलती भीड़ पर सुबह की ताज़गी अपना रंग लाई। सभी चिमनियों से धुएं के तैरते हुए बादल सूर्य का स्वागत करने के लिये बढ़े। मेले में ज़िन्दगी धड़कने लगी, हमाहमी शुरू हुई। सभी ओर भेड़ों का मिमियाना, घोड़ों का हिनहिनाना, बत्तख़ों की कांय-कांय और सौदा बेचनेवाली औरतों का शोर सुनाई देने लगा। रात के रहस्यपूर्ण अन्धेरे में लाल कुरती के दिल दहलानेवाले क़िस्सों-कहानियों ने जो आतंक पैदा कर दिया था, सुबह होते ही वह ग़ायब हो गया।

चेरेवीक अपने लंगोटिया यार त्सिबूल्या के कच्चे घर में लेटा हुआ अंगड़ाइयां तोड़े जा रहा था, नींद के ख़ुमार में

जम्हाइयां लिये जा रहा था। क़रीब ही बैल बंधे हुए थे, आटे और गेहूं से भरे बोरे रखे थे। स्पष्टतः वह अपने सुख-सपनों से विदा लेना नहीं चाहता था। मगर तभी उसके कानों में एक आवाज़ पड़ी। इतनी ही जानी-पहचानी थी यह आवाज़, जितना कि वह तन्दूर जहां फ़ुरसत के वक़्त लेटकर वह अपनी कमर सीधी करता था, या फिर जितना जाना-पहचाना था उसकी दूर की रिश्तेदार औरत का वह शराबख़ाना, जो उसके घर से सिर्फ़ दस क़दम की दूरी पर था।

"उठो, उठो!" उसकी कोमल-सी बीवी उसके कान में चीख़ी और पूरी ताक़त से उसने उसकी बांह खींची।

चेरेवीक ने जवाब देने के बजाय अपने गाल फुला लिये और इस तरह अपनी बांहों को हिलाने लगा मानो ढोल बजा रहा हो।

"दिमाग़ चल निकला है तुम्हारा!" उसकी बांहों को झटककर दूर हटाते हुए वह चिल्लाई। चेरेवीक के हाथ उसकी बीवी के मुंह पर पड़ते-पड़ते ही रह गये।

चेरेवीक उठकर बैठ गया, उसने आंखें मलीं और इधर-उधर नज़र घुमाई।

"अगर मैं झूठ बोलूं तो मुझपर शैतान की मार! प्यारी, सपने में मैं तुम्हारे तोबड़े को ढोल समझ बैठा था। रूसी फ़ौजी की तरह कोई ज़बर्दस्ती मुझसे यह ढोल बजवा रहा था। जानती हो कौन बजवा रहा था? वही सूअर के मुंहवाले

जिनका क़िस्सा हमें त्सिबूल्या ने पिछली रात सुनाया था..."

"बन्द करो अपनी बकवास! झटपट उठो और घोड़ी को बाज़ार में लेकर जाओ! लोग हमपर हंसेंगे: मेले में आये हैं और मुट्ठी भर पटसन भी नहीं बेच पाये..."

"यह सही है," चेरेवीक ने सहमति प्रकट की, "ज़रूर वे हमारी हंसी उड़ायेंगे।"

"उठो, उठो, अपना काम-काज देखो! अभी क्या तुम्हारी कम हंसी उड़ रही है!"

"मगर मैंने हाथ-मुंह तो धोया नहीं," कुछ और वक़्त लगाने के लिये जम्हाइयां लेते और पीठ खुजाते हुए चेरेवीक ने कहा।

"सजने-संवरने का भी तुमने ख़ूब ही वक़्त चुना है! पहले भी कभी ख़्याल आया इस बात का? यह लो तौलिया, साफ़ कर लो अपनी भोंड़ी सूरत..."

क़रीब ही कोई मुड़ी-मुड़ाई चीज़ पड़ी थी। बीवी ने उसे उठाया और डरकर फेंक दिया। वह लाल कुरती की आस्तीन थी!

"उठो, उठो, अपना काम-काज करो," सम्भलते हुए उसने दोहराया। उसने देखा कि डर के मारे मियां का तो ख़ून सूख गया है और उसके दांत बज रहे हैं।

"ख़ाक बिक्री होगी अब," घोड़ी खोलकर मेले की ओर ले जाते हुए वह मन ही मन बड़बड़ाया। "इस मनहूस मेले की तरफ़ रवाना होते वक़्त ही मेरा तो माथा ठनक गया

था। मेरा दिल ऐसे भारी था मानो किसी ने मेरी पीठ पर गाय की लाश लाद दी हो। फिर बैलों ने भी दो बार घर लौटने की कोशिश की थी। अब ख़्याल आता है कि जब घर से चले थे, तो था भी सोमवार। मतलब यह कि हर बात उल्टी हुई, सभी असगुन हुए। उधर कम्बख़्त शैतान के मारे नाक में दम है! एक आस्तीन के बिना ही अगर वह कुरती पहन ले, तो क्या आसमान फट पड़ेगा! मगर नहीं, क्या मजाल कि भले लोगों को चैन लेने दे। अब मान लो कि अगर मैं शैतान होता – भगवान बचाये – तो क्या रातों को चिथड़ों की तलाश में भटकता-फिरता?"

चेरेवीक अपने ख़्यालों की तरंगों में बहा चला जा रहा था कि एक भारी-भरकम और कर्कश आवाज़ उसके कानों में पड़ी। उसके विचारों की शृंखला टूट गई। उसके सामने लम्बे क़द का एक बंजारा खड़ा था।

"कहो भले मानस, क्या माल लाये हो बिक्री के लिये?"

चेरेवीक घड़ी भर ख़ामोश रहा। उसने बंजारे को सिर से पांव तक ग़ौर से देखा। उसने रुके बिना, घोड़ी की लगाम ढीली किये बिना, बहुत इत्मीनान से जवाब दिया –

"ख़ुद ही देख लो कि मैं क्या लाया हूं बिक्री के लिये!"

"घोड़े की लगाम?" चेरेवीक के हाथ में पकड़ी हुई लगाम की ओर देखते हुए बंजारे ने कहा।

"घोड़ी अगर लगाम होती है, तो वही समझ लो।"

"यार बुरा न मानना, लगता है कि सदा भूसे पर रखा है इसे!"

"भूसे पर?"

बंजारे की बात चेरेवीक को लग गई। उसने चाहा कि लगाम खींचकर घोड़ी को ज़रा बढ़ाकर दिखा दे और उस बंजारे के ताने को झूठा साबित कर दे। मगर कुछ ज़्यादा ही ज़ोर से झटक बैठा वह लगाम और हाथ ठोड़ी पर जा पड़ा। अचानक उसने अपने हाथ में टूटी हुई लगाम और लगाम के साथ बंधा हुआ देखा लाल आस्तीन का टुकड़ा। उफ़! हे भगवान! उसके रोंगटे खड़े हो गये! थूकता, अपने ऊपर सलीब बनाता और हाथ झटकता हुआ वह सिर पर पांव रखकर इस अनचाहे तोहफ़े से ऐसे दूर भागा कि कोई नौजवान भी उसकी क्या बराबरी करता। वह भीड़ में जाकर ग़ायब हो गया।

११

मेरी जूती, मेरा ही सिर
(एक कहावत)

"पकड़ लो! जाने न पाये!" गली के नुक्कड़ से कई छोकरे एक साथ चिल्लाये। अचानक चेरेवीक ने अपने को मज़बूत हाथों की गिरफ़्त में पाया।

"बांध लो इसकी मुश्कें! इसी ने एक भले मानस की घोड़ी चुराई थी।"

“भगवान तुम्हारा भला करे! किस लिये तुम मेरी मुश्कें कस रहे हो?”

“ज़रा इसे बनते देखो! चेरेवीक नामक किसान की घोड़ी किस लिये चुराई थी?”

“तुम्हारा दिमाग़ चल गया है, छोकरो! कभी किसी ने ख़ुद को भी लूटा है?”

“ये पुराने हथकंडे हैं हज़रत! पुरानी चालें! अगर यही बात थी, तो तुम ऐसे क्यों भाग रहे थे मानो ख़ुद शैतान तुम्हारा पीछा कर रहा हो?”

“कौन नहीं भाग खड़ा होगा, जब शैतान का कपड़ा...”

“किसी और को बहकाना ऐसी बातें करके! अगर न्यायाधीश को पता चल गया कि तुम शैतान के क़िस्से सुनाकर लोगों को डराते फिर रहे हो, तो अच्छी तरह से ख़बर ले ली जायेगी तुम्हारी!”

“इसे पकड़ लो! निकलने न पाये!” गली के दूसरे सिर से शोर सुनाई दिया। “वह रहा! वही है!”

चेरेवीक ने अपने दोस्त त्सिबूल्या को बहुत ही दयनीय स्थिति में पाया। उसके हाथ पीछे की ओर बंधे हुए थे और कई छोकरे उसे धकेलते हुए ला रहे थे।

एक छोकरे ने कहा–

“बड़ी अजीब-अजीब बातें हो रही हैं यहां! ज़रा सुनो तो इस बदमाश की बातें! सूरत से ही चोर लगता है। मगर

जब हमने इससे पूछा कि तुम एक पागल आदमी की तरह क्यों भागे जा रहे थे तो इसने जवाब दिया कि उसने जेब में से नसवार की डिबिया निकालनी चाही और उसकी जगह निकला शैतान की कुरती का टुकड़ा। बाहर आते ही उसमें से लाल शोला उठा और वह–सिर पर पांव रखकर भाग लिया।"

"वाह! दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। दोनों को एक साथ बांध लेना ही बेहतर रहेगा!"

१२

"क्या अपराध है मेरा, भले लोगो?
क्यों सता रहे हो तुम मुझे?"
उस बेचारे, मुसीबत के मारे ने कहा।
"क्यों तुम मुझे कोस रहे हो?
किस लिये, किस लिये?"
उसने कहा और फूट फूटकर रो पड़ा,
बह चलीं दुख भरी आंसुओं
की धारें, और नोच लीं
उसने अपनी पसलियां।

(आर्तेमोव्स्की-गुलक की
'मालिक और कुत्ता' नामक रचना से)

चेरेवीक और त्सिबूल्या एक छप्पर के नीचे एक साथ बंधे हुए पड़े थे। चेरेवीक ने पूछा–

"क्या, यार, क्या सचमुच कोई चीज़ उड़ा ली?"

"तुम भी यह कहने लगे, मेरे दोस्त! अगर मैंने अपनी ज़िन्दगी में कभी कोई चीज़ चुराई हो, तो मेरे हाथ-पांव टूटकर गिर जायें। हां, मां के बनाये हुए मक्खन के गुलगुले तो ज़रूर चुराये थे और सो भी दस बरस की उम्र के पहले-पहले।"

"जाने क्यों यह मुसीबत टूटी है हमपर? तुम्हारे साथ तो फिर भी बहुत बुरी नहीं गुज़री, क्योंकि किसी दूसरे की चीज़ चुराने के अपराध में बांध दिये गये हो, मगर मेरी बदक़िस्मती देखो कि मुझे अपनी ही घोड़ी का चोर बना दिया गया है। दोस्त, क़िस्मत ही खोटी है हम लोगों की!"

"फूटी हुई है तक़दीर हमारी! हम, हम बेबस, बेकस, बेचारे!"

इतना कहकर दोनों दोस्त सिसकियां भरने लगे।

"यह तुम्हें क्या हुआ है, चेरेवीक!" ग्रित्स्को ने प्रवेश करते हुए कहा। "किसने तुम्हें इस तरह बांध दिया है?"

"आह, गोलोपूपेन्को!" चेरेवीक ख़ुश होकर चिल्ला उठा। "देखो यार, यह है वह नौजवान मैंने जिसकी तुमसे चर्चा की थी। अगर मैं झूठ बोलूं, तो मुझे यहीं और इसी घड़ी मौत आ जाये! तुम्हारे सिर जितना बड़ा प्याला वह मुंह बनाये बिना एक ही सांस में गले से नीचे उतार गया था।"

"तो ऐसे भले नौजवान को वचन देकर पूरा क्यों नहीं किया तुमने?"

ग्रित्स्को को सम्बोधित करके चेरेवीक कहता गया—"लगता है कि भगवान ने इसी गुनाह की सज़ा दी है मुझे। माफ़ कर दो मुझे, भले नौजवान! अपने सिर की क़सम, हर चीज़ करने को तैयार हूं मैं तुम्हारे लिये... मगर तुम मुझसे कराना क्या चाहोगे? उस मेरी बुढ़िया के दिल में शैतान का डेरा है!"

"बुराई को दिल में पालना मुझे पसन्द नहीं, चेरेवीक! तुम अगर चाहो, तो मैं तुम्हें आज़ाद कर सकता हूं!" ग्रित्स्को ने छोकरों को आंख से इशारा किया। वही छोकरे जो पहरा दे रहे थे, अब उन्हें खोलने के लिये भागे। "मगर देखो अब तुम भी अपना कर्त्तव्य पूरा करना—यानी शादी कर देना! और शादी भी ऐसी धूम-धड़ाके की हो कि नाचते-नाचते बेदम हो जायें और पूरे साल भर टांगें दर्द करती रहें।"

"ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा!" चेरेवीक ने ताली बजाकर कहा। "मुझे ऐसी ख़ुशी हो रही है कि जैसे रूसी मेरी बुढ़िया को उठाकर ले गये हों। अब सोच-विचार करने को रखा ही क्या है? सही है या ग़लत—शादी होगी और आज ही—बस तय है!"

"देखो चेरेवीक! घण्टे भर में मैं तुम्हारे घर आऊंगा।

अब तुम घर जाओ – वहां घोड़ी और गेहूं के ख़रीदार तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं।"

"क्या! क्या घोड़ी मिल गई?"

"हां, मिल गई।"

चेरेवीक तो ख़ुशी के मारे सकते में आ गया। वह वहां से जाते हुए ग्रित्स्को को बुत बना-सा एकटक देखता रहा।

"हां, ग्रित्स्को, कुछ बुरे ढंग से तो पूरा नहीं किया मैंने अपना काम!" तेज़ी से क़दम बढ़ाते हुए नौजवान से लम्बे क़द के बंजारे ने कहा। "बैल अब मेरे हुए, ठीक है न?"

"हां!"

१३

डर मत, डर मत, प्यारी सखी,
साज-शृंगार कर, लाल-लाल बूट कस,
दुश्मनों का सिर कुचल एड़ी तले।
ठुमक ठुमक कर एड़ी बजा तू
ऐसे ठुमक तू दुश्मनों की तेरे
हो ज़बान बन्द और सकते में आयें।
डर मत, डर मत, प्यारी सखी!

(विवाह-गीत)

हाथ पर अपनी सुन्दर ठोड़ी रखे हुए परास्का अकेली बैठी थी अपने घर में, अपने विचारों में डूबती-उतराती। बहुत-सी चाहें-उमंगें मचल रही थीं उसके दिल-दिमाग़ में। बीच-बीच

में उसके लाल-लाल होंठों पर मुस्कान की हल्की-सी रेखा खेल जाती और ख़ुशी की किसी तरंग से तरंगित होकर उसकी काली भौंहें ऊपर को उठ जातीं। फिर उसके मन में विचारों की बदली-सी घिर जाती और उसकी हल्की बादामी आंखों के ऊपर उसकी भौंहें कमान की तरह तन जातीं।

"पर जैसा उसने कहा था यदि वह सच न निकला तो?" मन में सन्देह लाते हुए वह फुसफुसाई। "अगर उन्होंने उससे मेरी शादी न होने दी तो? अगर... नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! मेरी सौतेली मां मनमानी करती है, मैं भला अपनी मनमानी क्यों नहीं कर सकती? मैं क्या कुछ कम ज़िद्दी हूं किसी से? कैसा बांका नौजवान है वह! कैसी ग़ज़ब की लौ देती हैं उसकी काली आंखें! कैसे प्यारे अन्दाज़ में वह कहता है, 'मेरी जान, मेरी प्यारी परास्का!' उसकी सफ़ेद जाकेट क्या ख़ूब जंचती है उसपर! बेशक उसकी पेटी कुछ अधिक चमकीली होनी चाहिये। जब हम नये घर में जा बसेंगे, तो ख़ुद उसे अपने हाथों से बुनकर दूंगी मैं पेटी। यह ख़्याल आने पर तो बरबस मेरी बाछें खिल उठती हैं।" उसने मेले में ख़रीदा हुआ लाल काग़ज़ फ़्रेमवाला छोटा-सा शीशा निकाला और उसमें अपना चेहरा देखा। उसके मन में एक अनजानी-सी ख़ुशी मचल उठी। उसके विचारों के तार जुड़ने लगे–"किसी दिन कहीं न कहीं इस मां से भेंट ज़रूर होगी और तब वह चाहे फट क्यों न पड़े मैं उसके सामने

नहीं झुकूंगी। हां, सौतेली मां, बहुत मार-पीट लिया तुमने अपनी सौतेली बेटी को। बालू में से तेल निकल सकता है, पत्थर मोम हो सकता है, मगर मैं अब झुकने की नहीं तुम्हारे सामने। अरे हां, मैं एक बात तो भूले जा रही हूं—मैं शादी की टोपी तो पहनकर देख लूं—वह मुझपर कैसी जंचती है। वह टोपी चाहे मेरी सौतेली मां की ही क्यों न हो।"

वह उठी, हाथ में दर्पण लिये और उसके सामने सिर झुकाये हुए वह फूंक-फूंककर क़दम रखती हुई इस तरह कमरे में चक्कर लगाने लगी मानो उसे गिरने का डर हो। वह फ़र्श के बजाय छत को देख रही थी, जिसके नीचे तख़्ते लगे हुए थे और जहां से कुछ ही समय पहले पादरी का बेटा नीचे आ गिरा था और जहां तख़्तों पर मिट्टी के बर्तन रखे हुए थे।

"अरे मैं तो बिल्कुल बच्ची ही हूं," उसने हंसते हुए ऊंचे से कहा, "क़दम उठाते हुए सहमी जा रही हूं!"

वह ठुमकने और पैरों से ताल देने लगी। अब वह दिलेर होती गई। आख़िर उसने कूल्हे पर बायां हाथ रखा और शुरू कर दिया थिरकना—नाचना। उसके जूतों की एड़ियां थाप दे रही थीं, उसके सामने था दर्पण और होंठों पर था मनपसन्द गीत—

हरी-हरी शीशम की टहनी
अपना शीश झुका ले

काली-काली भौंहोंवाले
आ, साजन मतवाले!

हरी-हरी शीशम की टहनी
सिर को और झुका ले
काली-काली भौंहोंवाले
मुझको गले लगा ले।

इसी घड़ी चेरेवीक ने दरवाज़े में से भीतर झांककर देखा। दर्पण के सामने अपनी बेटी को नाचते देख वह दम साधकर खड़ा हो गया। वह देर तक अपनी बेटी को नाचते हुए देखता रहा। बेटी की इस असाधारण शरारत पर उसे बरबस हंसी आ रही थी। बेटी अपने नाच में ऐसी मस्त थी कि दीन-दुनिया की सुध ही नहीं थी उसे। मगर पिता ने जब अपने जाने-पहचाने गीत की पंक्तियां सुनीं, तो मन हुलस पड़ा। वह मैदान में आया, दोनों हाथ कमर पर रखे और सीना ताने। वह अपना काम-धाम भूल, लगा मस्त होकर नाचने। वे दोनों त्सिबूल्या का ज़ोरदार ठहाका सुनकर चौंके।

"यह भी ख़ूब रही! ख़ुद बाप-बेटी ही शादी का मज़ा लूटे जा रहे हैं। जल्दी से बाहर आओ भाई, दूल्हा आ गया है।"

अन्तिम शब्द सुनते ही परास्का का चेहरा उसके सिर पर बंधे हुए लाल फ़ीते से भी अधिक लाल हो गया। उसके मस्त-मौजी पिता को भी याद आया कि वह किस लिये यहां आया था।

"आओ बेटी, जल्दी करो! मैंने घोड़ी के पैसे खड़े कर लिये इसलिये ख़ीव्र्या बहुत ख़ुश है," सहमी-सहमी नज़र से इधर-उधर देखते हुए उसने कहा। "वह अपने लिये लहंगे और सभी तरह का अगड़म-बगड़म ख़रीदने गई है। हमें उसके लौटने से पहले-पहले सारा काम निपटा लेना चाहिये।"

दहलीज़ पर पांव रखते ही परास्का ने अपने को सफ़ेद जाकेट वाले नौजवान की बांहों में पाया। वह लोगों की भीड़ के साथ उसका बाहर इन्तज़ार कर रहा था।

"भगवान तुम्हारा कल्याण करे!" दोनों के हाथ हाथों में लेकर चेरेवीक ने आशिष दी। "तुम दोनों आजीवन सुखी और साथ-साथ रहो।"

इसी वक़्त भीड़ में कुछ गड़बड़-सी सुनाई दी।

"मैं जान दे दूंगी, पर यह नहीं होने दूंगी!" चेरेवीक की बीवी चीख़ रही थी। हंसते, मज़ाक़ करते हुए लोग उसे पीछे की ओर धकेल रहे थे।

"देखो, आपे से बाहर मत होओ, बीवी," यह देखकर कि दो हट्टे-कट्टे बंजारे उसके हाथ पकड़े हुए हैं चेरेवीक ने शान्त भाव से कहा। "जो होना था हो चुका। वचन देकर उसे पूरा न करना मुझे पसन्द नहीं।"

"नहीं, नहीं, मैं हरगिज़ ऐसा नहीं होने दूंगी!" ख़ीव्र्या चिल्लाई। मगर किसी ने परवाह ही नहीं की उसकी चीख़-पुकार

की। बहुत-से जोड़ों ने दुलहा-दुलहन के गिर्द नाचनेवालों की एक मज़बूत-सी दीवार बना ली।

भीड़ में एक बेला-वादक भी था – लम्बी-लम्बी बल खाई हुई मूंछोंवाला और घर के बुने गाढ़े की जाकेट पहने हुए। उसने बेला पर जो तान छेड़ी कि बस, सारी भीड़ एक ही रंग में रंगती, एक ही सूत्र में बंधती चलती गई। यदि कोई भी इस अनूठे दृश्य को देखता, तो उसे एक अजीब, अनबूझ-सी अनुभूति होती। मुस्कान की किरण से एकदम अनजान और उदास तथा चिड़चिड़े चेहरोंवाले लोग भी ठुमक रहे थे, कंधे लहरा रहे थे। संक्षिप्त में यह कि हर चीज़ नाच रही थी, मगर बूढ़ी-बुज़ुर्ग औरतों को देखकर तो शायद और भी अधिक अजीब और अनबूझ-सी अनुभूति होती। उनके चेहरों पर क़ब्र की विरक्ति और उदासी की छाप अंकित थी, पर वे भी हंसते-गाते, जीते-जागते इन्सानों के बीच से रास्ता बनाती हुई मटकती-नाचती आ-जा रही थीं। जिस तरह मेकेनिक निर्जीव कल-पुर्ज़ों में जान डाल देता है, उसी तरह शराब के नशे ने इन बुज़ुर्ग औरतों में ज़िन्दगी और फुर्ती ला दी थी। वे मानव के अनुरूप कार्य कर रही थीं। हर चीज़ की फ़िक्र से आज़ाद, जवानी ख़ुशी से वंचित, दर्द और सहानुभूति की आंच से अनजान, वे शराब के नशे में झूमते अपने सिरों को नचाती हुई हंसते-गाते लोगों के साथ ख़ुद भी नाच-गा रही थीं। उन्होंने दुलहा-दुलहन को एक नज़र देखने भर की परवाह तक न की।

ठहाकों और गीतों की आवाज़ डूबती गई, हो-हल्ला धीमा पड़ता गया। बेले के स्वर अस्पष्ट होते गये, उसकी आवाज़ दूर होती गई और शून्य में खो गई। दूर, बहुत दूर किसी के क़दम अभी भी ठुमक रहे थे, धपाधप बज रहे थे और बहुत दूर से सुनाई देनेवाली सागर की मरमर ध्वनि का आभास करा रहे थे। कुछ देर बाद बस शून्य ही शून्य रह गया, गहरा सन्नाटा छा गया।

ख़ुशी – हमारा प्यारा और चंचल मेहमान – क्या इसी तरह पंख लगाकर हमसे दूर नहीं उड़ जाता? बेकार ही अन्तिम और एकाकी स्वर, हर्ष-उत्कर्ष को व्यक्त करने का प्रयास करता है। ख़ुद अपनी ही आवाज़ की प्रतिध्वनि में उसे शून्यता और उदासी की गूंज सुनाई देती है। वह उसे सुनता है और परेशान हो उठता है। आज़ाद और तूफ़ानी जवानी के दिनों के मनचले दोस्त क्या इसी तरह एक एक करके इस बहुत बड़ी दुनिया में खो नहीं जाते? वे अपने पुराने दोस्त को क्या एकाकी और लुटा-खोया-सा नहीं छोड़ जाते? पीछे छूटनेवाले की बात नहीं पूछिये! बहुत भारी, बहुत दुखी है उसका मन! मगर कोई दवा नहीं उसके दर्द की!

तुर्गेनेव, इवान सेर्गेयेविच (१८१८–१८८३) – एक प्रमुख रूसी लेखक, छः बड़े उपन्यासों और अनेक लघु उपन्यासों और कहानियों के रचयिता। 'गायक' (१८४७) कहानी, रूसी लोगों के जीवन से सम्बन्धित तुर्गेनेव के कहानी-संग्रह 'शिकारी के शब्द-चित्र' से ली गई है। ये कहानियां १९वीं शताब्दी के पांचवें दशक में लिखी गईं।
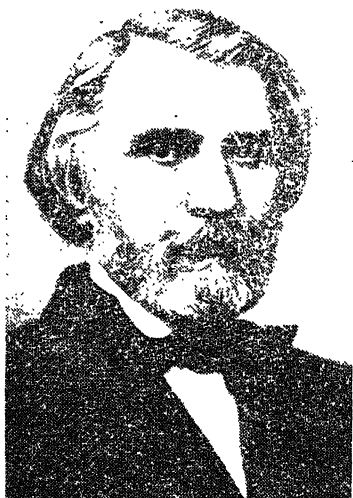
इवान तुर्गेनेव

गायक

कोलोतोव्का एक छोटा-सा गांव है, जो बीते ज़माने में एक ज़मींदारिन की मिल्कियत था, जो अपने झगड़ालू मिज़ाज की वजह से लड़ाकी के नाम से प्रसिद्ध थी (उसका असली नाम अंधकार के गर्भ में खोया है)। लेकिन इधर कुछ समय से वह गांव पीटर्सबर्ग के एक जर्मन की मिल्कियत में आ गया है। एक बंजर पहाड़ी की ढाल पर वह बसा है। एक बड़ी खाई इस पहाड़ी को ऊपर से लेकर नीचे तक दो हिस्सों

में काटती है। खाई क्या है, जैसे अतल गर्त मुंह बाये है। उसके इधर-उधर के बाजुओं को बारिश और बर्फ़ ने खोखला कर दिया है और यह बल खाती गांव की राह के ठीक मध्य तक चली गयी है। अभागे गांव के दो हिस्सों को इसने नदी से भी ज़्यादा बुरी तरह अलग कर दिया है, कारण कि नदी को तो कम से कम, पुल के ज़रिये पार किया जा सकता है। कुछ क्षीणकाय बेंत वृक्ष इसकी रेतीली ढालों से सहमे-से चिपके हैं, और एकदम नीचे–सूखे और पीतल की तरह पीले तले पर–पथरायी मिट्टी की भीमाकार शिलाएं पड़ी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उछाह को नष्ट करनेवाली स्थिति है, फिर भी आसपास के सभी लोग कोलोतोव्का की राह से अच्छी तरह परिचित हैं, वे वहां अक्सर और चाव से जाते हैं।

खाई की एकदम चोटी पर, उस स्थल से कुछ डग दूर जहां से वह एक तंग फांक के रूप में धरती से शुरू होती है, एक छोटी-सी चौरस झोंपड़ी खड़ी है। वह अकेली खड़ी है, अन्य सबसे अलग-थलग। फूस की इसकी छत है और धुवांकश भी इसमें मौजूद है। एक खिड़की, एक पैनी आंख की तरह खाई की ओर देखती रहती है। जाड़ों की सांझ में जबकि झोंपड़ी में रोशनी होती है, पाले की धुंध के बीच वह दूर से दिखाई देती है और उसकी रोशनी राह-चलते अनेक किसानों के लिए मार्गदर्शक तारे की भांति टिमटिमाती

रहती है। उसके दरवाज़े के ऊपर कीलों से एक नीली तख़्ती जड़ी है। यह झोंपड़ी एक शराबख़ाना है, जो 'स्वागत-गृह' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां शराब बिकती है, और सम्भवतः आम दामों से कुछ सस्ती नहीं मिलती, लेकिन आस-पास की इस तरह की अन्य जगहों के मुक़ाबिले, यहां कहीं ज़्यादा संख्या में लोग आते हैं। इसका कारण इस शराबख़ाने का मालिक निकोलाई इवानिच है।

निकोलाई इवानिच – जो कभी दुबला-पतला, घुंघराले बाल और गुलाबी गालोंवाला युवक था, अब एक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट वयस्क है – सफ़ेद बालोंवाला, थलथल चेहरा, टुइयां-सी भली और चण्ट आंखें, चिकना माथा जिस पर झुर्रियों का हल-सा चला हुआ है। वह बीस साल से भी अधिक अर्से से कोलोतोव्का में रह रहा है। निकोलाई इवानिच, अधिकांश शराबख़ाना-मालिकों की भांति, होशियार और तेज़ आदमी है। हालांकि वह लोगों को ख़ुश करने या उनसे बतियाने की कोई ख़ास कोशिश नहीं करता, फिर भी वह अपने गाहकों को आकर्षित करने तथा हिलगाने की कला जानता है। उन्हें भी अपने इस सुस्त मेज़बान की शांत तथा कोमल, लेकिन चौकस नज़र के नीचे उसके शराबख़ाने में समय बिताना बड़ा अच्छा मालूम होता है। वह काफ़ी सूझ-बूझ का धनी है, भू-स्वामियों, किसानों और शहरियों के जीवन की परिस्थितियों की पूर्ण समझ रखता है। कठिन मामलों में,

अगर वह चाहे, तो ढंग की सलाह दे सकता है, लेकिन, एक चौकस तथा स्वार्थी आदमी की भांति, अलग रहना ही पसन्द करता है, और अधिक से अधिक – सो भी केवल अपने घनिष्ठतम गाहकों को ही – उड़ते इशारों से, जैसे अनजाने और अनायास ही, ठीक रास्ता सुझाता है। रूसियों के लिए दिलचस्पी या महत्त्व की हर चीज़ की जानकारी वह रखता है – घोड़ों और मवेशियों की, इमारती लकड़ी और ईंटों की, मिट्टी के बरतनों, कपड़ों, चमड़े तथा नाच और गानों की। जब उसके यहां गाहक नहीं होते, तो वह, आम तौर से, अपनी झोंपड़ी के द्वार के सामने धरती पर बोरे की भांति बैठा रहता था, दुबली-पतली टांगों को अपने बदन के नीचे समेटे, हर राह-चलते से अभिवादन के मीठे बोल बोलता रहता है। अपने जीवन में उसने बहुत कुछ देखा है। पचीसियों छोटे कुलीन, जो उसके यहां वोद्का लेने आया करते थे, उसके देखते-देखते रुखसत हो गये। सौ मील के एटे-पेटे में हर चीज़ की उसे ख़बर रहती है, लेकिन किसी के भेद नहीं बताता और कभी आभास तक नहीं देता कि वह उन चीज़ों को भी जानता है, जिनका अत्यन्त चतुर पुलिस अफ़सर तक गुमान नहीं कर सकता। वह अपना भेद छिपाये रखता है, हंसता है, और अपने गिलास को खनकाता रहता है। उसके पड़ोसी उसका आदर करते हैं। ग़ैर-फ़ौजी जनरल – श्चेरे-पेतेन्को, ज़िले के भू-स्वामियों में जिसका दर्जा सबसे ऊंचा

है—जब कभी उसकी छोटी झोंपड़ी के पास से गुज़रता है, तो दयालुतापूर्ण अन्दाज़ से सिर हिलाकर उसका अभिवादन करता है। निकोलाई इवानिच असर-रसूख़वाला आदमी है। मिसाल के लिये घोड़ों का एक नामी चोर था। उसने निकोलाई इवानिच के एक मित्र के अस्तबल से घोड़ा चुरा लिया। निकोलाई इवानिच के असर से वह घोड़ा वापिस आ गया। पास के एक गांव के किसानों ने जब नये कारिन्दे को अपने ऊपर मानने से इनकार कर दिया था, तो उसने उनके होश ठिकाने लगा दिये, आदि, आदि। लेकिन यह समझना ग़लत होगा कि यह सब वह अपनी न्यायप्रियता की वजह से, पड़ोसी के प्रति अपने आदर-भाव की वजह से करता है—नहीं! वह तो केवल हर उस चीज़ को, जो किसी भी रूप में उसके आराम और आसाइश में ख़लल डाल सकती है, रोकने का प्रयत्न करता है। निकोलाई इवानिच विवाहित है, और उसके बाल-बच्चे हैं। उसकी घरवाली चपल और चुस्त, पैनी नाक और पैनी नज़रवाली शहरी औरत है। इधर कुछ सालों से, अपने पति की भांति, वह भी मोटा गयी है। वह हर चीज़ के लिए उसपर निर्भर रहता है। कैश-बक्स की कुंजी उसी के पास रहती है। नशे में उत्पात करनेवाले उससे डरते हैं। वह उन्हें पसन्द नहीं करती। पल्ले उनसे कुछ पड़ता नहीं, और दुनिया भर का शोर वे मचाते हैं। पीने पर भी अपनी ज़बान बन्द और शालीनता को क़ायम रखनेवाले उसे अच्छे

लगते हैं। निकोलाई इवानिच के बच्चे अभी छोटे हैं। पहले सब मर गये। लेकिन जो बचे हैं, वे अपने माता-पिता के अनुरूप हैं। उनके छोटे-छोटे स्वस्थ तथा समझदार चेहरे बड़े प्यारे लगते हैं।

जुलाई का महीना था। असह्य गर्मी पड़ रही थी। तभी, एक दिन, अपने पांवों को जैसे-तैसे घसीटता, कोलोतोव्का की खाई के किनारे-किनारे, अपने कुत्ते के साथ मैं 'स्वागत-गृह' की ओर बढ़ रहा था। सूरज, जैसे क्रोधोन्मत्त आकाश से आग बरसा रहा था और निर्ममता के साथ धरती को भून रहा था। हवा में दमघोट धूल भरी थी। चमकीले कौवे अपनी चोंचें खोले, उदासी के साथ राह-चलतों की ओर ताक रहे थे, जैसे रहम की भीख मांग रहे हों। केवल गौरैये उदास नहीं थे, बल्कि अपने परों को फैलाये, और दिनों से भी अधिक जोश के साथ चहक रहे थे, बाड़ों पर चोंचें लड़ाते, धूल भरी सड़क पर से एक साथ उड़ते और सन के हरे खेतों के ऊपर भूरे बादलों के रूप में मंडराने लगते। प्यास के मारे मेरा बुरा हाल था। आसपास में पानी का कुछ पता नहीं था। कोलोतोव्का में और इसी प्रकार स्तेप के अन्य कतिपय गांवों में भी लोग जोहड़ में से एक तरह की पतली कीचड़ पीते हैं... कारण, न तो वहां झरने हैं, न कुएं। और इस घिनौने पेय को भला पानी कौन कहेगा? सो एक गिलास

बीयर या क्वास पीने के ख़याल से मैं निकोलाई इवानिच की ओर बढ़ रहा था।

यों तो साल के बारहों महीने – और यह मानना पड़ेगा – कोलोतोव्का कभी भी कोई बहुत आकर्षक स्थल नहीं मालूम होता, लेकिन उस समय तो वह ख़ास तौर से उदास मालूम होता है, जब जुलाई के चौंधिया देनेवाले सूरज की निर्मम किरणें गहरी खाई और घरों की भूरी लड़खड़ाती छतों पर, और झुलसी धूल भरी चरागाह पर आग बरसाती हैं, जहां क्षीणकाय तथा लम्बी टांगोंवाली मुर्ग़ियां हताश-सी भटकती नज़र आती हैं। वे आग बरसाती हैं पुरानी हवेलियों के अवशेषों पर, जिसका अब केवल खोखला, एस्प लकड़ी का भूरा ढांचा भर बाक़ी रह गया है और खिड़कियों की जगह छेद नज़र आते हैं। वे आग बरसाती हैं उस जोहड़ पर, जिसके इर्द-गिर्द बिछुआ, चिरायता और जंगली घास बुरी तरह उग आयी है, जो काला पड़ गया है, हंसों के परों से छितरा हुआ है, जिसके किनारों पर अधसूखी कीचड़ जमी हुई है और टूटे-फूटे बांध के निकट पांवों से महीन रौंदी हुई राख जैसी धरती पर भेड़ें गरमी के मारे बेदम और हांफती, नाचारगी में एक-दूसरे से सटी खड़ी रहती हैं, ऊब से थकी और अपने सिरों को लटकाये जैसे इस असह्य गर्मी के आख़िर ख़त्म होने की प्रतीक्षा कर रही हों। थककर चूर पांवों को घसीटता मैं निकोलाई इवानिच के घर के निकट पहुंचा।

गांव के लड़कों के लिए मैं जैसे एक अजूबा था। जैसा कि होता है, बेमतलब और एकटक नज़र से वे मुझे ताकते रहे। और कुत्तों ने, अपना क्षोभ प्रकट करते हुए, गला फाड़कर और इतने ज़ोरों से भौंकना शुरू किया कि लगता था जैसे उनकी आंतें ही निकल जायेंगी – यहां तक कि वे बेदम होकर हांफने लगे। तभी, अचानक, शराबख़ाने के दरवाज़े में एक आदमी प्रकट हुआ – लम्बा क़द, नंगा सिर, ग्रेटकोट पहने, जो कमर के नीचे एक नीले कमरबंद से कसा था। वह गृहदास-सा मालूम होता था। उसके मुरझाये हुए, झुर्रियोंदार चेहरे के ऊपर घने सफ़ेद बाल अस्त-व्यस्त खड़े थे। अपनी बांहों से – जो प्रत्यक्षतः ज़रूरत से ज़्यादा हिल रही थीं – वह किसी को इशारे करके पुकार रहा था। साफ़ मालूम होता था कि वह पिये हुए है।

"अरे, आओ, चले आओ!" लड़खड़ाती आवाज़ में उसने कहा, अपनी घनी भौंहों को मुश्किल से चढ़ाते हुए, "अरे आओ, जल्दी आओ, झपकौवा! ओह, भाई, तुम भी क्या चींटी चाल से रेंग रहे हो, सच! यह बुरी बात है, भाई, वे भीतर तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं और तुम अभी रंग ही रहे हो... आओ, जल्दी आओ।"

"अच्छा, अच्छा, आया, अभी आया," फटी-सी आवाज़ आयी और झोंपड़ी के पीछे से एक टुइयां-सा आदमी प्रकट हुआ – नाटा क़द, मोटा, लंगड़ा। वह अपेक्षाकृत साफ़-

सुथरा ऊनी कोट एक ही आस्तीन से लटकाये था और सिर पर एक ऊंची नोकदार टोपी लगाये था, जो नीचे भौंहों तक खिंची थी। इससे उसका गोल मोटा चेहरा बड़ा चण्ट और हास्यजनक मालूम होता था। उसकी छोटी-छोटी पीली आंखें बेचैनी से इधर-उधर घूम रही थीं और उसके पतले होंठ बराबर एक बाधित मुसकान धारण किये थे। उसकी पैनी और लम्बी नाक पतवार की भांति निर्लज्ज अन्दाज़ में आगे को बढ़ी हुई थी। "आया, भाई, आया।" लंगड़ाता हुआ वह शराबख़ाने की ओर बढ़ा। "मुझे किस लिए पुकार रहे हो? कौन मेरा इंतज़ार कर रहा है?"

"क्यों मैं तुम्हें पुकार रहा हूं?" ग्रेटकोट पहने आदमी ने ताने के लहजे में कहा। "तुम भी अजीब जीव हो, झपकौवा! हम तुम्हें शराबख़ाने में आने के लिए पुकार रहे हैं और तुम पूछते हो कि क्यों पुकार रहे हो? यहां भले लोग सब के सब तुम्हारी बाट देख रहे हैं—याश्का-तुर्क, और बगूला नवाब और जीज़्द्रा का ठेकेदार। याश्का ने ठेकेदार के साथ बाज़ी बदी है, एक कुल्हड़ बीयर की, जो एक नम्बर रहेगा, जो सबसे अच्छा गायेगा... समझे?"

"क्या याश्का गाने जा रहा है?" झपकौवा के नाम से सम्बोधित आदमी ने सजग दिलचस्पी के साथ कहा। "लेकिन कहीं यह तुम बेपर की तो नहीं उड़ा रहे हो, बक्कू?"

"मैं बकवास नहीं कर रहा," बक्कू ने गर्व के साथ कहा, "बकवास तो तुम करते हो। जब बाज़ी लगी है, तो सोचना चाहिए कि वह गायेगा। कुछ आया समझ में मेरे बेनज़ीर बुद्धू, मक्कार, झपकौवे!"

"अच्छा, अच्छा, तो चलो, भीतर चलें, मेरे भोले!" झपकौवे ने पलटकर कहा।

"इसी बात पर कम से कम एक चुम्मा तो दो, प्यारे!" अपनी बांहों को चौड़ा फैलाते हुए बक्कू ने कहा।

"दूर हो, बड़ा आया है प्यार करनेवाला!" अपनी कोहनी से उसे धकियाते हुए झपकौवे ने घृणा से कहा, और दोनों ने झुककर नीचे दरवाज़े में प्रवेश किया।

उनकी बातचीत ने, जो मुझे अनायास ही सुनाई पड़ गयी थी, मेरी उत्सुकता को बेहद जगा दिया। याश्का-तुर्क के बारे में एक से अधिक बार मैं सुन चुका था कि वह इधर के इलाक़े में सबसे अच्छा गायक है, और अब अचानक उसे सुनने का—सो भी कला के एक अन्य माहिर के साथ प्रतियोगिता में—अवसर मेरे सामने प्रस्तुत था। मैंने अपने क़दम तेज़ किये और घर के भीतर पहुंच गया।

हमारे पाठकों में सम्भवतः बहुत ही कम ऐसे होंगे, जिन्हें गांव के किसी शराबख़ाने को देखने का मौक़ा मिला हो, लेकिन हम शिकारी लोग सभी जगह पहुंच जाते हैं! उनकी बनावट बहुत ही सीधी-सादी होती है। उनमें आम तौर से

एक अंधियारा दालान और एक भीतरी कमरा होता है, जो बीच की दीवार द्वारा दो हिस्सों में बंटा होता है। पीछेवाले हिस्से में किसी गाहक को जाने की इजाज़त नहीं होती। बीच की दीवार में, बलूत की एक चौड़ी मेज़ के ऊपरवाले हिस्से में, एक चौड़ा छेद कटा रहता है। इस मेज़ या काउंटर पर शराब बेची जाती है। छेद के ठीक सामने ख़ानों में विभिन्न आकार की बंद बोतलें सजी रहती हैं। कमरे के अगले हिस्से में, जो गाहकों के काम आता है, बेंचें, दो या तीन ख़ाली पीपे और एक कोने में मेज़ रखी होती है। गांव के शराबख़ाने ज्यादातर अंधियारे होते हैं, और उनकी दीवारों पर रंग-बिरंगे सस्ते चित्र कम देखने में आते हैं, जोकि गांव के घरों में ज़रूर लगे होते हैं।

जब मैं 'स्वागत-गृह' के भीतर पहुंचा, तो वहां काफ़ी बड़ी मण्डली जमा थी।

काउंटर के पीछे अपनी उसी जगह पर बीच की दीवार के छेद को क़रीब-क़रीब पूरी तरह ढके हुए, रंग-बिरंगी छींट की कमीज़ पहने निकोलाई इवानिच खड़ा था। अपने मोटे गालोंवाले चेहरे पर अलस मुसकान के साथ झपकौवा और बक्कू के लिए – उस समय जब कि वे भीतर दाख़िल हुए – अपने गदराये गोरे हाथ से दो गिलासों में शराब ढाल रहा था। उसके पीछे, खिड़की के निकट एक कोने में, पैनी नज़र वाली उसकी पत्नी दिखाई दे रही थी। कमरे के बीचोंबीच

याश्का-तुर्क खड़ा था – तेईसेक वर्ष की आयु, दुबला-पतला और सुडौल। वह नीले सूती कपड़े का लम्बे पल्ले वाला कोट पहने था। देखने में एक चुस्त-चपल फ़ैक्टरी-मज़दूर मालूम होता था और आकार-प्रकार से वह कुछ ज़्यादा अच्छे स्वास्थ्य का धनी नहीं जान पड़ता था। उसके धंसे हुए गाल, उसकी बड़ी-बड़ी बेचैन-सी भूरी आंखें, सीधी-सतर नाक और कोमल गतिशील नथुने, उसके पीत-सुनहरे घुंघराले बाल, जो गोरे-चिट्टे ढालू माथे के ऊपर पीछे की ओर उलटकर संवारे हुए थे, उसके भरे हुए किन्तु सुन्दर, भावपूर्ण होंठ और उसका समूचा चेहरा अनुराग भरी तथा संवेदनशील प्रकृति का सूचक था। वह काफ़ी विह्वल मालूम होता था। वह अपनी आंखें टिमटिमा रहा था, उसकी सांस ताबड़तोड़ चल रही थी, उसके हाथ थरथरा रहे थे, जैसे उसे बुख़ार चढ़ा हो, और सचमुच उसे बुख़ार चढ़ा भी था – विह्वलता का आकस्मिक बुख़ार, जिससे वे सभी अच्छी तरह परिचित हैं, जो श्रोताओं के सामने बोलने या गाने के लिए खड़े होते हैं। उसके निकट चालीसेक साल का एक और आदमी खड़ा था – चौड़े कंधे और चौड़ी कपोलास्थि, संकरा माथा, संकरी तातारी आंखें, छोटी चपटी नाक, चौरस ठोड़ी और चमकीले काले बाल, सुअर के बालों की भांति कड़े। सांवले, सीसे जैसा रंग लिये, उसके चेहरे और ख़ास तौर से पीले होंठों का भाव, अगर वह इतना थिर और स्वप्निल न होता, तो निरा बनैला

बनकर रह जाता। वह ज़रा भी हिल-डुल नहीं रहा था, जुए में जुते बैल की भांति धीरे-धीरे बस अपने इर्द-गिर्द ताक रहा था। चिकने तांबे के बटन लगा फ़्रॉक-कोट-सा कुछ वह पहने था, जो नया क़तई नहीं था, और अपनी भारी-भरकम गरदन के इर्द-गिर्द काले रेशम का एक पुराना रूमाल लपेटे था। उसे लोग बगूला नवाब कह रहे थे। उसके ठीक सामने, देव-प्रतिमाओं के नीचे एक बेंच पर, याश्का का प्रतिद्वन्दी, जीज़्द्रा का ठेकेदार बैठा था। तीसेक वर्ष का आदमी, नाटा क़द, मज़बूत काठी, चेचकरू चेहरा, घुंघराले बाल, टुंटी, ऊपर को उठी नाक, सजीव भूरी आंखें और खसरा दाढ़ी। वह पैनी नज़र से इधर-उधर देख रहा था, हाथों को अपने नीचे दाबे था, टांगों को लापरवाही से हिला रहा था और पांवों को – जिनमें गोट वाले तर्ज़दार बड़े बूटे थे – थपथपा रहा था। मख़मली कालर से युक्त भूरे ऊनी कपड़े का एक नया कोट वह पहने था। इसके नीचे एक लाल क़मीज़ नज़र आ रही थी, जिसके बटन गले से सटकर बंद थे, और जिसका रंग कोट के अनुपात में और भी ज़्यादा चटक मालूम होता था। सामने के कोने में, दरवाज़े के दाहिनी ओर, मेज़ पर एक किसान बैठा था – एक तंग झगला पहने, जो कंधे पर फटा हुआ था। दो छोटी-छोटी खिड़कियों के धूल से अटे पल्लों में से सूरज की रोशनी की एक पतली पीतवर्ण धारा भीतर पड़ रही थी, बल्कि कहिये कि कमरे

के चिर-निवासी अंधकार से निष्फल संघर्ष कर रही थी। कमरे की हर चीज़ धुंधली नज़र आ रही थी, जैसे आंशिक रोशनी के धब्बे छितरे हों। लेकिन, दूसरी ओर, कमरा बहुत कुछ ठंडा मालूम हो रहा था और चौखट को लांघते ही दमघोट गर्मी इस तरह जाती रही, जैसे सिर पर से थका देनेवाला बोझ उतार लिया गया हो।

मेरा प्रवेश – और यह मैं साफ़ देख सकता था – निकोलाई इवानिच के गाहकों को पहले-पहल कुछ अखरा, लेकिन यह देखकर कि वह मित्र की भांति मेरा अभिवादन कर रहा है, वे आश्वस्त हो गये और इसके बाद जैसे मुझे भूल गये। मैंने थोड़ी बीयर की फ़रमाइश की और एक कोने में बैठ गया, उस किसान के पास जो फटा हुआ झगला पहने था।

"हां, तो," बक्कू ने सुरदार आवाज़ में कहा, शराब के अपने गिलास को एक ही घूंट में यकायक गले में उंडेलते तथा उद्गार के साथ हाथों को अजीब अन्दाज़ में हिलाते हुए – जिसके बिना उसके लिए एक भी शब्द ज़ुबान पर लाना सम्भव नहीं मालूम होता था – "अब क्या देर है? जब शुरू ही करना है तो कर डालो। हां तो, याश्का?"

"हां, हो जाय, शुरू हो जाय!" निकोलाई इवानिच ने भी उछाह से सुर में सुर मिलाया।

"बेशक, शुरू हो जाय," आत्मविश्वास से भरी मुसकान के साथ ठेकेदार ने थिर भाव से कहा, "मैं तैयार हूं।"

"और मैं भी तैयार हूं," विकलता से उमगती आवाज़ में याश्का ने घोषणा की।

"अच्छा तो शुरू करो," झपकौवा चिचियाया।

लेकिन, सर्वसम्मति से व्यक्त इस इच्छा के बावजूद, दोनों में से एक ने भी शुरू नहीं किया। ठेकेदार तो अपनी बेंच से उठा तक नहीं। लगता था जैसे वे किसी चीज़ की प्रतीक्षा में हों।

"शुरू करो!" तेज़ी के साथ और मुंह फुलाकर बगूला नवाब ने कहा।

याश्का चौंक पड़ा। ठेकेदार उठा, अपनी पेटी को ठीक किया और गले को साफ़ किया।

"लेकिन शुरू कौन करे?" बगूला नवाब से, थोड़े बदले हुए लहजे में, उसने पूछा। बगूला नवाब कमरे के बीचोंबीच अभी भी वैसे ही निश्चल खड़ा था, अपनी ज़बर टांगों को चौड़ा फैलाये और अपनी सबल बांहों को लगभग कोहनी तक शलवार की जेबों में खोंसे।

"तुम, बिलाशक तुम," बक्कू ने हकलाते हुए ठेकेदार से कहा, "समझे भाई, तुम!"

बगूला नवाब ने भौंहों के नीचे से उसकी ओर ताका। बक्कू ने एक हल्की-सी चीं की, अचकचाकर छत की ओर देखा, अपने कंधे झटके और इसके बाद कुछ नहीं बोला।

"चित-पट कर लो," बगूला नवाब ने दो-टूक आवाज़ में घोषित किया। "और बीयर के कुल्हड़ को मेज़ पर रखो!"

निकोलाई इवानिच नीचे की ओर झुका, हांफकर फ़र्श पर से बीयर का कुल्हड़ उठाया और उसे मेज़ पर जमा दिया।

बगूला नवाब ने याश्का की ओर देखा और कहा – "हां तो!"

याश्का ने अपनी जेब को टटोला, एक कोपेक निकाला, अपने दांतों से उसपर निशान लगाया। ठेकेदार ने अपने लम्बे कोट के घेरे के भीतर से चमड़े का एक नया बटुवा निकाला, धीरे-धीरे उसकी डोरी खोली, उसे हिलाकर अपनी हथेली पर ज़्यादा रेज़गारी बाहर निकाली और एक नया कोपेक चुनकर उठा लिया। बक्कू ने अपनी मैली टोपी आगे बढ़ायी, जिसकी कलगी टूटी थी और अलग लटक आयी थी। याश्का ने अपना सिक्का उसमें डाल दिया और ठेकेदार ने अपना।

"देखो, एक ही उठाना," बगूला नवाब ने झपकौवे से कहा।

झपकौवा आत्मतुष्टि से मुसकराया, दोनों हाथों में टोपी को उसने थामा और उसे हिलाने लगा।

एकाएक गहरा सन्नाटा छा गया। सिक्के, एक-दूसरे से टकराकर, धीमी आवाज़ में खनक रहे थे। मैंने ध्यान से अपने इर्द-गिर्द देखा: हर चेहरे पर गहरी उत्सुकता का भाव छाया था। ख़ुद बगूला नवाब तक में व्यग्रता के चिन्ह प्रकट हो

रहे थे। यहां तक कि मेरा पड़ोसी किसान भी, जो फटा हुआ झगला पहने था, उत्सुकता से अपनी गरदन को आगे की ओर खींचे था। झपकौवे ने टोपी के भीतर अपना हाथ डाला और ठेकेदार का सिक्का उसने निकाला। हरेक ने एक लम्बी सांस भरी। याश्का का चेहरा गुलाबी हो उठा और ठेकेदार ने अपने बालों पर हाथ फेरा।

"देखा, मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम शुरू करो," बक्कू चहका, "क्यों, कहा था न?"

"बस, बस!" बगूला नवाब ने घिनाकर कहा। फिर ठेकेदार की ओर सिर से इशारा करते हुए, "हां तो, शुरू करो!"

"कौनसा गीत शुरू करूं?" ठेकेदार ने पूछा, थोड़ी घबराहट अनुभव करते हुए।

"जो तुम्हें पसन्द हो," झपकौवे ने जवाब दिया, "जो भी तुम चुनो।"

"बेशक, जो तुम चुनो," अपने हाथों को धीरे-धीरे सीने पर बांधते हुए निकोलाई इवानिच ने स्वर में स्वर मिलाया। "तुम्हें इसकी पूरी छूट है। जो चाहो, गाओ, शर्त यही है कि बढ़िया गाना, और हमारा जो सही फ़ैसला होगा, वह हम बाद में देंगे।"

"सही फ़ैसला, बिलकुल ठीक!" अपने ख़ाली गिलास को चाटते हुए बक्कू ने कहा।

निकाल बाहर किया था और जो बिना किसी काम-धंधे के, बिना एक कोपेक भी कमाये, दूसरे लोगों के ख़र्च पर प्रतिदिन नशे में धुत्त होने की जुगत भिड़ाना जानता था। उसके जान-पहचानियों की संख्या काफ़ी बड़ी थी, जो शराब और चाय से उसकी ख़ातिर करते थे, हालांकि यह वे ख़ुद नहीं बता सकते थे कि ऐसा क्यों करते हैं। कारण, मण्डली का मनोरंजन करना तो दूर, अपनी बेमानी बकबक, चिपकने की असह्य आदत, अपने अनियंत्रित अंगसंचालन तथा कभी न रुकनेवाली अस्वाभाविक हंसी से सबको ऊबा देता था। न वह गा सकता था, न नाच सकता था। अपने जीवन में उसने कभी कोई सुलझी हुई या तुक की बात नहीं कही थी। वह केवल बकबक करता था, हर चीज़ के बारे में झूठ बोलता था। वह पूरा बक्कू था। फिर भी, बीस-पच्चीस मील के एटे-पेटे में एक भी दारू-पार्टी ऐसी नहीं हुई, जिसमें मेहमानों के बीच अपने पतले-लम्बे आकार के साथ वह न मौजूद हो। यहां तक कि उसके वे अब आदी हो गये थे और एक अनिवार्य बुराई के रूप में उसे सहन कर लेते थे। वे सब के सब – यह सच है – उसे नीची नज़र से देखते थे। लेकिन उनमें केवल बगूला नवाब ही एक ऐसा था, जो उसकी मूर्खतापूर्ण बकबक को क़ाबू में रखना जानता था।

झपकौवे में और बक्कू में ज़रा भी समानता नहीं थी। उसका उपनाम भी उसपर लागू होता था, हालांकि वह

अन्य लोगों की अपेक्षा अपनी आंखों को कुछ ज़्यादा नहीं झपकाता था। यह एक जानी-मानी बात है कि रूसी लोग अच्छे उपनाम देने में माहिर होते हैं। बावजूद इसके कि इस आदमी के अतीत के बारे में विस्तार से जानने की मैंने कोशिश की, फिर भी उसके जीवन के कितने ही स्थल मेरे लिए – और शायद अन्य कितने ही लोगों के लिए भी – बराबर अंधकार के धब्बे बने हुए हैं। उसके जीवन की घटनाएं – जैसा कि लेखक लोग कहते हैं – विस्मृति के गर्त में खोयी हैं। मैं केवल इतना ही जान सका कि वह कभी एक सन्तानहीन वृद्धा मालकिन के यहां कोचवान के रूप में नौकरी करता था और तीन घोड़ों के साथ – जो उसकी देख-रेख में थे – नौ दो ग्यारह हो गया था। पूरे एक साल तक वह ग़ायब रहा और इसमें शक नहीं कि आवारा जीवन की त्रुटियों तथा कठिनाइयों के अनुभव से उसने कान पकड़े और वह लौटकर फिर वहीं पहुंचा। परन्तु तब वह पंगु हो चुका था। अपनी मालकिन के पांवों पर जा गिरा। अपने अनुकरण-योग्य व्यवहार से, कुछ ही सालों में, उसने अपने अपराध को धो दिया और धीरे-धीरे अपनी मालकिन की नज़रों में ऊंचा उठा और उसका पूर्ण विश्वास प्राप्त करते हुए अन्त में कारिन्दे के पद पर पहुंच गया। इसके बाद अपनी मालकिन की मृत्यु हो जाने पर – कैसे, यह कभी नहीं मालूम हो सका – उसे कम्मीगिरी से आज़ादी मिली। उसने अब शहरियों की श्रेणी में पांव रखा,

पड़ोसियों से ख़रबूज़ों के खेत लगान पर लिये, धन कमाया और अब अमन-चैन से दिन बिता रहा था। वह अनुभवी आदमी था। गांठ का पक्का था। भलाई या बुराई की भावना से अधिक जिसमें अपना फ़ायदा देखता था वही करता था। उसने काफ़ी पापड़ बेले थे। वह लोगों को समझता था और उनसे अपना काम निकालना जानता था। वह लोमड़ी की भांति चौकस था और साथ ही उसमें व्यावहारिक सूझ भी थी। हालांकि खुर्रांट स्त्रियों की भांति कानाफूसी में वह रस लेता था, फिर भी वह अपना भेद कभी नहीं प्रकट होने देता था, जबकि अन्य लोगों से वह सभी कुछ उगलवा लेता था। भोला बनने या दिखने का वह कभी प्रयत्न नहीं करता था, जैसा कि उस जैसे चालाक लोग ज्यादातर करते हैं। साथ ही ऐसा करना उसके लिए कठिन था: उस जैसी छोटी-छोटी आंखें—काइयां पटबीजनों से अधिक पैनी और भीतर तक पैठ जानेवाली आंखें—मैंने कभी नहीं देखीं। वे कभी देखती मात्र नहीं थीं, बल्कि उलटती-पुलटती और कोना-कोना छानती मालूम होती थीं, जैसे कुछ भी उनसे छिपा नहीं रह सकता। कभी, प्रत्यक्षतः किसी मामूली बात को लेकर, एक साथ कई-कई हफ़्ते तक वह सोचता रहता, और फिर कभी अचानक जोखिम में कूदने का निश्चय कर लेता, लगता जैसे वह अपने को नष्ट ही कर डालेगा। लेकिन फिर सब कुछ ठीक होता नज़र आता और हर चीज़ क़ायदे से

चलने लगती। भाग्य का वह सिकन्दर था, अपनी तक़दीर में वह विश्वास करता था, और शगुनों-अपशगुनों को मानता था। मोटे तौर से वह बेहद अंधविश्वासी था। उसे लोग बहुत पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि वह किसी से कोई ख़ास लगाव नहीं रखता था, लेकिन लोग उसकी इज़्ज़त करते थे। परिवार के नाम पर, ले-देकर, उसका एक छोटा लड़का था, जिसे वह जी-जान से चाहता था और जो ऐसे पिता के हाथों पलकर दुनिया में अपनी जगह बनाने की सहज ही आशा कर सकता था। "छोटा झपकौवा बिल्कुल अपने बाप जैसा निकलेगा," बड़े-बूढ़े इसके बारे में अभी से कहते हैं, दबे स्वरों में, उस समय जबकि गर्मियों में, सांझ के समय, कच्ची मिट्टी की अपनी मुंडेरों पर बैठकर वे गपशप करते हैं और उनमें हरेक इसका आशय समझता है। कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं।

जहां तक याश्का-तुर्क और ठेकेदार का संबंध है, सो उनके बारे में ज़्यादा कहने की आवश्यकता नहीं। याश्का का उपनाम तुर्क इसलिए पड़ा कि वह सचमुच एक तुर्की स्त्री के रक्त से पैदा हुआ था, जो युद्ध में बन्दी बन गयी थी। प्रकृति से वह कलाकार था, हर मानी में, पेशे से काग़ज़ बनाने के एक कारख़ाने में लैडलर का काम करता था। कोई सौदागर इस कारख़ाने का मालिक था। जहां तक ठेकेदार का संबंध है, सो उसकी क़िस्मत के बारे में—मुझे स्वीकार करना

चाहिए – मैं कुछ नहीं जानता। वह मुझे एक चपल शहरी-सा लगा, हर चीज़ पर हाथ आज़माने के लिए प्रस्तुत। लेकिन बगूला नवाब – सो उसका वर्णन अधिक विस्तार से करने की ज़रूरत है।

इस आदमी को देखते ही पहली छाप जो आपके हृदय पर पड़ेगी, उससे एक अनगढ़, बोझिल और दुर्दमनीय शक्ति का बोध आपको होगा। उसका ढांचा बहुत ही अटपटा बना था – एक ही खण्ड का, जैसा कि हमारे यहां लोग कहते हैं। लेकिन वह अपने इर्द-गिर्द तेज का प्रसार करता मालूम होता था, और – भले ही यह अजीब मालूम हो – उसके इस भालू-से आकार-प्रकार में भी एक तरह की कमनीयता थी, जो सम्भवतः अपनी शक्ति में उसके दृढ़ विश्वास से प्रस्फुटित हुई थी। एकाएक यह निश्चय करना कठिन था कि किस श्रेणी से इस देव का संबंध है। न तो वह गृहदास मालूम होता था, न शहरी दिखता था, न काम से अलग हुआ फटेहाल क्लर्क, न छोटा दीवालिया कुलीन, जो कुछ न रहने पर शिकारिया या झगड़ालू का धंधा शुरू कर देता है। सच पूछो तो वह एकदम निराला था। कहां से वह आया है या किस चीज़ ने उसे हमारे ज़िले में बसने के लिए प्रेरित किया है, यह कोई नहीं जानता। लोगों का कहना है कि वह माफ़ीदारों की जाति का है, और यह कि बीते ज़माने में कहीं सरकारी नौकरी करता था। लेकिन इस बारे में निश्चय के साथ कुछ

नहीं कहा जा सकता। और बिलाशक ऐसा कोई नहीं था, जिससे कुछ मालूम किया जा सकता–ख़ुद उससे तो बिल्कुल ही नहीं। वह बेहद चुप रहनेवाला और उदास स्वभाव का आदमी था। और तो और, कोई निश्चय से यह तक नहीं जानता था कि उसका गुज़र कैसे होता था। वह कोई धंधा नहीं करता था, किसी के पास आता-जाता नहीं था। शायद ही किसी से उसकी घनिष्ठता या मेल-मिलाप हो। फिर भी ख़र्च करने के लिए उसके पास पैसा था। यह सच है कि अधिक नहीं, पर कुछ तो था ही। रब्त-ज़ब्त में, अपने व्यवहार में, वह एकदम विनम्र हो, ऐसा नहीं था। न! विनम्र शब्द उसके लिए नहीं इस्तेमाल किया जा सकता। वह इस तरह रहता था, जैसे अपने आसपास के लोगों से बेख़बर हो। और वह किसी की पर्वाह भी नहीं करता था। बगूला नवाब का (यही उपनाम लोगों ने उसका रख छोड़ा था, यों उसका असली नाम पेरेव्लेसोव था) समूचे ज़िले में भारी रोब था। बड़ी तत्परता के साथ लोग उसका कहना मानते थे, हालांकि किसी को हुक्म देने का उसे कोई अधिकार नहीं था, न वह ख़ुद ही कभी लोगों पर–जिनसे मिलने का उसे इत्तफ़ाक़ होता था–अपना अधिकार जताने का ज़रा भी प्रयत्न करता था। वह जो कहता–वे मानते। शक्ति का भी सदा अपना एक प्रभाव होता है। वह दारू को मुश्किल से ही कभी मुंह से लगाता था, स्त्रियों से कोई वास्ता नहीं रखता था, और

गाने का बेहद शौक़ीन था। बहुत कुछ उसमें रहस्यमय था। ऐसा मालूम होता था जैसे व्यापक शक्तियां, विक्षोभ से भरी, उसके भीतर बसेरा डाले हैं। ऐसा लगता जैसे एक बार जाग्रत हो जाने पर, फूट पड़ने का मौक़ा मिलने पर, ये शक्तियां उसे और उसके सम्पर्क में आनेवाली हर चीज़ को नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगी। मैं यह समझता हूं कि इस आदमी के जीवन में ऐसा कोई विस्फोट हो चुका है, और अपने उस अनुभव से सबक़ लेकर ही—नष्ट होने से बाल-बाल बचने के बाद—वह अब अपने आपको इतना कसकर अपनी मुट्ठी में रखता है। सबसे विचित्र बात मुझे यह लगी कि उसमें एक तरह की जन्मजात सहज-स्वाभाविक क्रूरता के साथ-साथ उतने ही सहज-स्वाभाविक रूप में उदारता का भी मिश्रण था—एक ऐसा मिश्रण, जो अन्य किसी आदमी में मुझे कभी दिखाई नहीं दिया।

हां तो ठेकेदार आगे बढ़ आया और अपनी आखों को आधा मूंदते हुए अत्यन्त ऊंची आवाज़ में गाने लगा। काफ़ी मीठी और सुहावनी, हालांकि कुछ फटी हुई उसकी आवाज़ थी। लवा-पक्षी की भांति—वैसी ही आवाज़ में—वह गा रहा था, निरन्तर मुरकियां लेते, आरोह-अवरोह के साथ स्वरों को उठाते-गिराते और हर बार सप्तम तक पहुंचाते हुए जहां वह बड़ी सावधानी से टिककर उसे और भी लम्बा खींचता था। इसके बाद वह उसे छोड़ देता और अचानक फिर शुरू

से स्वरों को पकड़ता, अद्भुत आवेग और उद्वेग के साथ। उसकी लयकारी कभी अपेक्षाकृत साहसिक रूप धारण कर लेती थी और कभी अपेक्षाकृत हास्यपूर्ण। पारखी उसे सुनकर भारी सन्तोष प्रकट करते और जर्मन बुरी तरह खीज उठते। यह था रूसी ténore di grazia, ténore léger*। उसने बहुत ही सजीव नृत्यधुन पर एक गीत गाया। अन्तहीन गलकारियों, तान और अलापों, उद्बोधनों तथा पुनरावृत्तियों के आल-जाल के बीच उसके जो थोड़े बहुत बोल मैं पकड़ सका, वे इस प्रकार थे—

> जोतूंगी धरती
> मैं तरुणी, मैं तरुणी,
> बोऊंगी लाल-लाल फूल!
> बोऊंगी लाल-लाल फूल!

वह गा रहा था। सब बहुत ही एकचित हो उसे सुन रहे थे। उसे भी जैसे इसका अनुभव प्रतीत होता था कि वास्तव में संगीतप्रिय लोगों की संगत में बैठा है, और अपनी तरफ़ से कोई कसर नहीं छोड़ रहा है। हमारे इलाक़े के लोग सचमुच में संगीतप्रेमी हैं। ओर्योल राजमार्ग पर स्थित सेर्गियेव्स्कोये गांव अपने सुस्वर सह-गान के लिए ठीक ही

---

* सुरीली हल्की आवाज़।

रूस के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रसिद्ध है। ठेकेदार बहुत देर तक गाता रहा, लेकिन अपने श्रोताओं में किसी ख़ास उछाह का संचार नहीं कर सका। उसे सह-गान का संग प्राप्त नहीं था। लेकिन अन्त में, ख़ास तौर से आवेगपूर्ण आलाप के बाद, जिसे सुनकर बगूला नवाब तक के होंठ खिल गये, बक्कू ख़ुशी से चीख़े बिना नहीं रह सका। सभी उछाह से लहरा उठे। बक्कू और झपकौवा भी दबी आवाज़ में उसका साथ देने लगे और कहने लगे—"भई ख़ूब, वाह! थोड़ी और ऊपर उठा ले आवाज़ शैतान की दुम! गाये जा, सपोलिये! समां बांधे रह, हरामी! फिर लड़खड़ाया, कुत्ते! शैतान तेरी रूह को जहन्नुम रसीद करे!" निकोलाई इवानिच काउंटर के पीछे मुग्ध भाव से इस बाज़ू से उस बाज़ू अपना सिर हिला रहा था। बक्कू अपनी टांगों को झुला रहा था, अपने पांवों से ताल दे रहा था, अपने कंधों को झटक रहा था, जबकि याश्का की आंखें अंगारे की भांति ख़ूब लाल दमक रही थीं, वह पत्ते की भांति ऊपर से नीचे तक थरथरा रहा था, और विह्वलता से मुसकरा रहा था। केवल बगूला नवाब ही एक ऐसा आदमी था, जिसकी मुद्रा में कोई अन्तर नहीं पड़ा था और वह पहले की भांति निश्चल खड़ा था। लेकिन उसकी आंखें, जो ठेकेदार पर जमी थीं, कुछ मुलायम हो आयी थीं, हालांकि उसके होंठों पर अभी भी हिक़ारत का भाव छाया था। आम उछाह से उत्साहित होकर ठेकेदार

ने आलाप का वह समां बांधा, ऐसे-ऐसे आलाप लेने शुरू किये, अदाकारी के वे जोड़-तोड़ दिखाये और अपने गले के साथ इतने ज़ोरों से उठका-पटकी की कि अन्त में, पीतवर्ण और थकान से चूर, पसीने में सराबोर, जब उसने क्षीण अन्तिम सुर खींचा और अपने समूचे बदन को पीछे की ओर फेंका, तो सब के सब बड़े जोश से एक साथ वाह-वाह कर उठे। बक्कू उसकी गरदन से जा लिपटा और अपनी लम्बी हड़ियल बांहों में लेकर उसे दबोचने लगा। निकोलाई इवानिच का चिकना चेहरा लाल हो गया, ऐसा मालूम होता था जैसे वह जवान हो गया हो। याश्का पागलों की भांति चिल्लाया—"लाजवाब, अद्भुत!" यहां तक कि मेरा पड़ोसी भी —फटा झगला पहने वह किसान अपने को नहीं रोक सका और मेज़ पर घूंसा पटकते हुए चिल्ला उठा —"भई वाह... ओह, शैतान उठा ले जाय मुझे... भई वाह!" और निश्चयात्मक अन्दाज़ में एक बाज़ू मुंह मोड़कर उसने थूक की पिचकारी छोड़ी।

"वाह, भाई, तुमने तबीयत ख़ुश कर दी," बक्कू चहका। थककर चूर ठेकेदार को अपने आलिंगनों से अभी तक उसने मुक्त नहीं किया था। "तुमने तबीयत ख़ुश कर दी, इससे इनकार नहीं किया जा सकता! बाज़ी तुम्हारे हाथ रही, भाई, बाज़ी तुम्हारे हाथ रही। बधाई, कुल्हड़ अब तुम्हारा है! याश्का तुमसे कोसों पीछे है... सच, कोसों...

चाहे मेरी बात गांठ बांध लो!" (और उसने एक बार फिर ठेकेदार को अपने सीने से सटा लिया।)

"बस, बस, रहने दो, उसकी जान छोड़ो। ओह तुमसे तो पीछा छुड़ाना मुश्किल है..." झपकौवे ने कुछ खीज के साथ कहा, "उसे बेंच पर बैठने दो। देखते नहीं कितना थक गया है। मूर्ख कहीं का! गीले पत्ते की तरह उसके साथ ही चिपक गया है!"

"अच्छा तो यह बैठकर सुस्ताये, तब तक मैं इसकी सेहत का जाम खनकाता हूं," बक्कू ने कहा और काउंटर के सामने पहुंच गया। "तुम्हारे खाते में, सुना भाई!" ठेकेदार को सम्बोधित करते हुए फिर उसने कहा।

ठेकेदार ने सिर हिलाकर हामी भरी, बेंच पर बैठ गया, अपनी टोपी के भीतर से तौलिया निकाला और उससे अपना मुंह पोंछने लगा। उधर बक्कू ने लालच भरी उतावली के साथ वोद्का का गिलास ख़ाली किया, कांखा और चेहरे पर, पक्के पियक्कड़ों की भांति, चिन्ताग्रस्त उदासी का भाव धारण कर लिया।

"तुम बहुत सुन्दर गाते हो, भाई, बहुत सुन्दर!" निकोलाई इवानिच ने दुलराते हुए कहा, "और याश्का, अब तुम्हारी बारी है। और देखो, डरना नहीं। देखें, कौन जीतता है, हां, कौन जीतता है। हालांकि ठेकेदार बहुत सुन्दर गाता है, सच, बहुत सुन्दर गाता है।"

"हां, बहुत सुन्दर!" निकोलाई इवानिच की पत्नी ने भी कहा और मुसकराहट के साथ याश्का की ओर देखा।

"सुन्दर, वाह!" मेरे पड़ोसी ने दबे स्वर में दोहराया।

"ओह जंगली कहीं का!" अचानक बक्कू उबल पड़ा और मेरी बग़ल में बैठे, कंधे पर फटा झगला पहने किसान के पास जाते हुए उंगली से उसकी ओर इशारा किया और उसके इर्द-गिर्द फुदकते हुए हंसने लगा। "जंगली आदमी! यहां क्यों आ मरा?" ठहाकों के बीच वह चिंघाड़ उठा।

बेचारा किसान सिटपिटा गया और अभी उठकर जल्दी-जल्दी खिसकने ही जा रहा था कि अचानक बगूला नवाब की लौह आवाज़ सुनाई दी—

"नाक में दम कर दिया कम्बख़्त ने! आख़िर चाहता क्या है?" अपने दांतों को पीसते हुए उसने दो टूक आवाज़ में कहा।

"मैं... मैं... मैं कुछ नहीं," बक्कू बुदबुदाया, "कुछ भी तो नहीं... मैं केवल..."

"बस, बस, सुन लिया, मुंह बंद कर!" बगूला नवाब ने पलटकर जवाब दिया, "हां तो याश्का, शुरू करो!"

याश्का ने अपने गले को हाथों से पकड़ा।

"हां तो, सच, भाइयो... मैं नहीं जानता... ओह, पता नहीं, क़सम से, जाने क्या..."

"बस, बस, रहने दो। डरो नहीं। शरम करो!.. पीछे

क्यों रहते हो? ख़ुदा की देन से गाओ जितना भी बढ़िया गा सको!"

और बगूला नवाब ने इंतज़ार में आंखें झुका लीं।

याश्का कुछ क्षण चुप रहा, अपने इर्द-गिर्द उसने नज़र डाली और हाथों से अपना मुंह ढंक लिया। सब की आंखें जैसे उसपर जमकर रह गयी थीं, ख़ास तौर से ठेकेदार की, जिसके चेहरे पर आत्मविश्वास की चिर भावना तथा सफलता से उत्पन्न विजयी उल्लास को बेधकर बेचैनी की एक धुंधली झलक बरबस उभर आयी थी। वह दीवार से पीठ टिकाये बैठा था, और दोनों हाथों को उसने फिर अपने नीचे कर लिया था, लेकिन पहले की भांति अपनी टांगों को अब वह नहीं झुला रहा था। आख़िर याश्का ने जब चेहरे पर से अपने हाथ हटाये, तो उसका चेहरा मुर्दे की भांति पीला मालूम होता था। झुकी हुई पलकों के नीचे उसकी आंखें कुछ पथरा-सी गयी थीं। उसने एक गहरी सांस भरी और गाना शुरू कर दिया... उसकी आवाज़ की पहली ध्वनि धुंधली और असम थी। ऐसा मालूम होता था जैसे वह उसकी छाती से नहीं, बल्कि कहीं दूर से आ रही हो, और तैरती हुई संयोगवश कमरे में आ पहुंची हो। उसके इस थरथराते गूंजते हुए स्वर ने हम सब में एक अजीब भावना का संचार किया; हमने एक दूसरे की ओर देखा और निकोलाई इवानिच की पत्नी अपने आपको चौकस करती मालूम हुई। पहले के बाद

ही उसने दूसरे स्वर का छोर उठाया, अधिक सबल और लम्बा, लेकिन प्रत्यक्षतः अभी भी थरथराता, साज़ के उस तार की भांति, जो सबल उंगली से झनझनाये जाने पर, अब अपनी आख़िरी – तेज़ी से क्षीण होती हुई – थरथराहट में शेष हो रहा हो। दूसरे के बाद तीसरा – और फिर, क्रमशः, अधिकाधिक आवेग तथा व्यापकता धारण करते हुए एक करुण रागिनी के रूप में वे उमड़ चले। 'खेत में नहीं थी एक ही डगरिया' वह गा रहा था, और गीत के स्वर एक अजीब मिठास तथा उदासी का हमारे दिलों में संचार कर रहे थे। ऐसी आवाज़, मुझे स्वीकार करना चाहिए, मैंने बिरले ही कभी सुनी थी। उसकी आवाज़ फटी और टूटी हुई-सी थी और इसमें एक तरह की वेदना का स्पर्श था। इतना ही नहीं, बल्कि वह, शुरू-शुरू में, कुछ विकारग्रस्त तक मालूम हुई। लेकिन उसमें सच्चे अनुराग की गहराई थी, यौवन था, शक्ति थी, माधुर्य था, और एक तरह की मोहक, चिन्तायुक्त तथा करुण उदासी थी। रूसी आवेगपूर्ण और सच्ची भावना उस आवाज़ में गूंज रही थी और हिलोरें ले रही थी, और सीधे हृदय को – हृदय में जो कुछ भी रूसी था उस सब को – छूती मालूम होती थी। गीत उमड़-घुमड़कर प्रवाहित हो रहा था। याश्का प्रत्यक्षतः अब पूरे रंग में था। उसकी वह झिझक अब लोप हो गयी थी, और अपनी कला के आनन्दोल्लास में – उसके प्रवाह में – उसने अपने आपको पूर्णतया छोड़ दिया था।

उसकी आवाज़ में अब वह थरथराहट नहीं थी। उसमें कम्पन था, लेकिन आन्तरिक अनुराग का कम्पन, मुश्किल से पकड़ में आनेवाला, ऐसा जो तीर की भांति श्रोताओं के अन्तर्तम को बेधता चला जाता है। और उसका ज़ोर, दृढ़ता और विस्तार धीमी गति से बढ़ता जाता है। मुझे वह दृश्य याद आता है, जो मैंने एक सपाट रेतीले तट पर सूर्यास्त के समय देखा था। ज्वार का उभार कम था और समुद्र की गरज, भारी और आतंकप्रद, कहीं दूर से आ रही थी। सफ़ेद रंग की एक समुद्री चिड़िया निश्चल बैठी थी, उसका रेशमी वक्ष छिपते हुए सूरज की गुलाबी आभा से दमक रहा था और वह, अपने सुपरिचित समुद्र का अभिवादन करने के लिए, डूबते हुए लाल भभूका सूरज का अभिवादन करने के लिए, केवल जब-तब अपने लम्बे पंखों को चौड़ा फैला लेती थी। याश्का को सुनते समय मुझे उसकी याद हो आयी। वह गा रहा था, अपने प्रतिद्वन्द्वी और हम सबके अस्तित्व से एकदम बेख़बर। साहसी तैराक के लिए जिस प्रकार लहरें सम्बल बनती हैं, वैसे ही हमारी गहरी, अनुरागपूर्ण संवेदना उसका सम्बल थी। वह गा रहा था, और उसकी आवाज़ की प्रत्येक ध्वनि में ऐसा अनुभव होता था जैसे कुछ है जो हमारे अत्यन्त निकट है, जो हमें प्रिय है, कुछ ऐसा जिसमें व्यापकता है, विस्तार है, जैसे हमारे जाने-पहचाने स्तेप हमारी आंखों के सामने खुलते और अन्तहीन विस्तारों में फैलते जा रहे हों।

मुझे लगा जैसे मेरे हृदय में आंसू उमड़-घुमड़ रहे हों और आंखों में तैरने के लिए ऊपर उठ रहे हों। अचानक दबी हुई सुबकियों ने मेरा ध्यान खींचा... मैंने घूमकर देखा- शराबख़ाने के मालिक की घरवाली रो रही थी, अपने वक्ष को खिड़की की ओटक से सटाये। याश्का ने उड़ती नज़र से उसकी ओर देखा, और वह और भी ज़्यादा मिठास के साथ, और भी ज़्यादा सुरीली आवाज़ में गाने लगा। निकोलाई इवानिच ने आंखें नीची कर लीं, झपकौवे ने मुंह फेर लिया, बक्कू-बिल्कुल द्रवीभूत-खड़ा था, मूर्खों की भांति अपना मुंह बाये, बेचारा किसान कोने में धीमी-धीमी सुबकियां ले रहा था और रुआंसी आवाज़ के साथ अपना सिर हिला रहा था, और बगूला नवाब के लौह चेहरे पर- उसकी तनी हुई भौंहों की छांव में-धीरे-धीरे एक बड़ा-सा आंसू थिरक रहा था, और ठेकेदार अपनी कसी हुई मुट्ठी को माथे तक उठाये थिर बैठा था... अगर याश्का अपने स्वर को ख़ूब ऊंचे, असाधारण रूप में कटीले स्तर तक ले जाकर-इस तरह जैसे उसकी आवाज़ टूट गयी हो-अचानक पूर्ण विराम पर न आ जाता, तो मैं नहीं जानता कि किस रूप में इस आम भावावेश का अन्त होता। किसी ने कोई उद्‌गार व्यक्त नहीं किया, कोई हिला तक नहीं। सब के सब जैसे इस इन्तज़ार में थे कि वह फिर गाना शुरू करता है या नहीं। लेकिन उसने अपनी आंखें खोलीं, कुछ इस तरह

जैसे हमारी इस निस्तब्धता ने उसे अचरज में डाल दिया हो। जिज्ञासा-भरी मुद्रा में उसने हम सब पर नज़र डाली... और देखा कि जीत उसकी है।

"याश्का," उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए बगूला नवाब ने कहा, और इससे अधिक वह और कुछ नहीं कह सका।

हम सब खड़े थे, जैसे हमें काठ मार गया हो। ठेकेदार धीमे-से उठा और याश्का के पास पहुंचा।

"तुम... तुम्हारी... जीत तुम्हारी!" आखिर जैसे-तैसे उसने अपनी बात को व्यक्त किया और लपककर कमरे से बाहर चला गया।

उसकी इस द्रुत और निश्चित हरकत ने जैसे उस मोहिनी को भंग कर दिया। अचानक हम ख़ुशी से चहकने और बातें करने लगे। बक्कू गेंद की भांति उछल-उचक रहा था, अस्फुट आवाज़ में बोल और बांहों को पनचक्की के पंखों की भांति नचा रहा था। झपकौवा लंगड़ाता हुआ याश्का के पास पहुंच उसे चूमने लगा। निकोलाई इवानिच उठकर खड़ा हुआ और ऐलान किया कि बीयर का दूसरा कुल्हड़ वह ख़ुद अपनी ओर से भेंट करेगा। बगूला नवाब एक तरह की सहृदय, सरल हंसी हंसा, ऐसी जिसे उसके चेहरे पर देखने की मैं कभी आशा नहीं करता था। बेचारा किसान आस्तीनों से आंखों, गालों, नाक और दाढ़ी को पोंछता हुआ अपने कोने में

बारबार दोहरा रहा था – "ओह, सुन्दर, ख़ुदा की क़सम, बहुत सुन्दर! मुझे कुत्ते की औलाद कह चाहे, लेकिन सुन्दर, बहुत सुन्दर!" और निकोलाई इवानिच की घरवाली, जिसका चेहरा लाल हो गया था, जल्दी से उठी और वहां से खिसक गयी। याश्का छोटे बच्चे की भांति अपनी विजय का आनन्द ले रहा था। उसके समूचे चेहरे का जैसे कायापलट हो गया था और उसकी आंखें ख़ुशी से ख़ूब दमक रही थीं। उसे खींचते हुए काउंटर के पास ले जाया गया। उसने रोते हुए किसान को पास आने का इशारा किया और शराबख़ाने के मालिक के छोटे लड़के को ठेकेदार की टोह में रवाना कर दिया, लेकिन वह मिला नहीं। मौज-मेले का दौर शुरू हुआ। "तुम्हें अपना गाना फिर सुनाना होगा। ख़ूब जमकर, गयी रात तक!" हवा में अपने हाथों को ऊंचा उठाते हुए बक्कू ने रट लगायी।

मैंने याश्का की ओर एक बार फिर देखा और बाहर निकल आया। मैं अब रुकना नहीं चाहता था, मुझे डर था कि कहीं वह पहला असर बिगड़ न जाय, जो मेरे हृदय पर पड़ा था। लेकिन गर्मी अभी भी उतनी ही असह्य थी जितनी कि पहले। ऐसा मालूम होता था जैसे उसकी एक मोटी भारी तह ठीक धरती के ऊपर टंगी हो। लगता था मानो गहरे नीले आकाश की सतह पर नन्ही-नन्ही उजली चिंगारियां अत्यन्त महीन, क़रीब-क़रीब काली धूल को आर-पार करती

लपक रही थीं। हर चीज़ ख़ामोश थी। और थकान से निढाल हुई प्रकृति की इस गहरी ख़ामोशी में कुछ था, जो आशाओं को चूर और हृदय को उत्पीड़ित करता था। आगे डग रखता मैं सूखी घास की एक कोठरी में जाकर ताज़ा कटी घास पर, जो अब क़रीब-क़रीब सूख चली थी, लेट गया। बहुत देर तक मुझे नींद नहीं आयी, बहुत देर तक याश्का की अदम्य आवाज़ मेरे कानों में गूंजती रही... आख़िर गर्मी और थकान ने अपना कब्ज़ा जमाया, और मैं गहरी नींद में गया। जब जागा तो देखा, हर चीज़ अंधेरे में लिपटी है। इर्द-गिर्द छितरी घास से तेज़ गंध उठ रही है, और वह कुछ नम मालूम होती है। अधखुली छत की धरनियों में से पीतवर्ण तारे धुंधले टिमटिमा रहे थे। मैं बाहर निकला। सूरज छिपने की दमक कभी की बिला चुकी थी, और उसकी आख़िरी निशानी क्षितिज पर धुंधली-सी रोशनी के रूप में दिखाई दे रही थी। लेकिन रात की ताज़गी पर वायुमण्डल में–जिसे सूरज कुछ ही देर पहले तक झुलसाता रहा था–अभी भी गर्मी का एहसास था, और हृदय ठंडी हवा के एक झोंके के लिए अभी भी अकुला रहा था। हवा का पता नहीं था, बादल भी कहीं नज़र नहीं आते थे। आकाश चारों ओर से साफ़ था, पारदर्शी काला–मृदुभाव से टिमटिमाते अनगिनत तारों से युक्त, जो मुश्किल से ही दिखाई देते थे। गांव में रोशनियां टिमटिमा रही थीं, और निकट ही झिलमिल करते शराबख़ाने में से

उलझी हुई तथा बेमेल आवाज़ों का शोर सुनाई दे रहा था, जिसके बीच मुझे लगा जैसे याश्का की आवाज़ मेरी पहचान में आ रही हो। कभी-कभी तूफ़ानी हंसी की एक बाढ़ वहां से फट पड़ती थी। मैं छोटी खिड़की के पास पहुंचा और उसके शीशे से मैंने अपना चेहरा सटा लिया। एक आह्लादविहीन, लेकिन विविधतापूर्ण और सजीव दृश्य मुझे दिखाई दिया: सब के सब नशे में धुत्त थे—सब, याश्का समेत। अपना वक्ष उघारे वह बेंच पर बैठा था, और नृत्य की धुन पर कर्कस आवाज़ में कोई बाज़ारू गीत गा रहा था। उसकी उंगलियां अलस भाव से गितार के तारों को झनझना रही थीं। उसके गीले बालों के गुच्छे उसके चेहरे पर लटक आये थे, जो भयानक रूप में पीला लग रहा था। कमरे के बीच में पूर्णतया धुत्त तथा बिना लम्बा कोट पहने बक्कू किसान के सामने, जो भूरे रंग का कोट पहने था, उछल-उछलकर नाच रहा था। किसान, अपनी ओर से, कठिनाई के साथ अपने पांव से थिरक और ताल दे रहा था और अपनी अस्तव्यस्त दाढ़ी के भीतर से निरर्थक हंसी में खीसें निपोर रहा था। रह-रहकर वह अपना एक हाथ हवा में लहरा रहा था, मानो कह रहा हो—"कुछ भी हो!" और उसका चेहरा अत्यन्त हास्यजनक था। अपनी भौंहों को वह चाहे जितना तोड़ता-मरोड़ता, उसकी आंखों के भारी ढक्कन खुलने का नाम न लेते, ऐसा मालूम होता था जैसे वे उसकी मुश्किल से दिखाई पड़नेवाली

चुंधी और बेजान-सी आंखों के ऊपर चिपक गये हों। वह नशे में पूरी तरह गड़गच्च आदमी की मुग्ध दशा में पहुंचा हुआ था, जिसमें कि हर राह-चलता उसके चेहरे को देखकर कहता है – "वाह भाई, यह क्या हुलिया बना रखा है तुमने!" झपकौवा केकड़े की भांति लाल-सुर्ख़, अपने नथुनों को ख़ूब चौड़ा फैलाये, एक कोने में कुत्सा से हंस रहा था। केवल निकोलाई इवानिच ने, जैसा कि शराबख़ाने के एक अच्छे मालिक के अनुकूल है, अपने सन्तुलन को डिगने से बचाये रखा था। कमरे में अनेक नये चेहरों की भरमार थी, लेकिन उनमें मुझे बगूला नवाब नहीं दिखाई दिया।

तेज़ डगों से मैं उस पहाड़ी पर से नीचे उतरने लगा, जिसपर कोलोतोव्का बसा है। इस पहाड़ी के पदतल में एक चौड़ा मैदान फैलता चला गया है। सांझ के झुटपुटे की धुंधियाली लहरों में डूबा वह और भी भीमाकार मालूम होता था, और जैसे काले पड़ते आकाश में एकाकार हुआ जा रहा था। खाई की किनारे वाली सड़क पर मैं तेज़ डगों से चल रहा था, तभी एकाएक मैदान में कहीं दूर से किसी लड़के की साफ़ आवाज़ सुनाई दी – "अनत्रोप्का! अनत्रोप्का-आ-आ!" वह हठीली और अश्रुपूर्ण निराशा से चिल्ला रहा था, अन्तिम अक्षर को बहुत-बहुत लम्बा खींचता हुआ।

कुछ क्षणों के लिए वह चुप हो रहा, इसके बाद उसने फिर चिल्लाना शुरू कर दिया। उसकी आवाज़ थिर, हल्की

अलसायी हुई हवा में साफ़ गूंज रही थी। और भी कुछ नहीं तो तीस बार उसने अनत्रोप्का नाम पुकारा होगा। तभी, मैदान के एकदम दूसरे छोर से, मानो किसी दूसरी दुनिया में से, क़रीब-क़रीब अस्पष्ट-सी आवाज़ तैरती हुई आयी –

"क्या-आ-आ?"

लड़के ने ख़ुशी से छलछलाते और साथ ही गुस्से के साथ जवाब में तुरंत चिल्लाकर कहा –

"यहां आओ, शैतान! जंगली भूत!"

"किस लि-ए-ए?" काफ़ी देर बाद उधर से जवाब आया।

"इसलिए कि पिताजी तुम्हारी चमड़ी उधेड़ना चाहते हैं!" पहली आवाज़ ने पलटकर उतावली में जवाब दिया।

इसके बाद दूसरी आवाज़ ने जवाब में फिर कुछ पलटकर नहीं कहा, और लड़के ने फिर अनत्रोप्का चिल्लाना शुरू कर दिया। उसकी चिल्लाहट, उत्तरोत्तर धुंधली और अधिकाधिक अन्तर के साथ, अभी भी मेरे कानों में तिरती आ रही थी उस वक़्त भी, जब एकदम अंधेरा छा गया था। मैं जंगल के कोने से मुड़ा, जो मेरे गांव को घेरता हुआ फैला है और कोलोतोव्का से तीन मील से कुछ अधिक दूर पड़ता है...

"अनत्रोप्का-आ-आ!" रात की परछाइयों से घिरी वायु में अभी भी वह आवाज़ सुनाई पड़ रही थी।

तोलस्तोय, लेव निकोलायेविच (१८२८–१९१०) –प्रतिभाशाली कलाकार और विचारक, विश्व साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद के एक प्रमुख प्रतिनिधि। 'युद्ध और शान्ति', 'आन्ना करेनिना', 'पुनरुत्थान' आदि सुविख्यात उपन्यासों के जन्मदाता।

'नाच के बाद' (१९०३) लेव तोलस्तोय की अन्तिम कहानियों में से एक है।

लेव तोलस्तोय

नाच के बाद

"आपका कहना है कि मनुष्य अपने आप तो भले-बुरे को नहीं समझ सकता, सब कुछ वातावरण पर निर्भर करता है, मनुष्य वातावरण की उपज होता है। मैं यह नहीं मानता। मैं समझता हूं कि सब संयोग का खेल है। कम से कम अपने बारे में तो ऐसा ही लगता है।"

हमारे बीच बहस चल रही थी। कहा गया कि मनुष्य के चरित्र को सुधारने से पहले जीवन की परिस्थितियों को सुधारना ज़रूरी है। बहस के ख़ात्मे पर ये शब्द हमारे दोस्त

इवान वसील्येविच ने कहे, जिनका हम सब बड़ा मान करते थे। सच तो यह है कि बहस के सिलसिले में किसी ने भी यह नहीं कहा था कि हम स्वयं ही भले और बुरे का अन्तर नहीं समझ सकते। पर इवान वसील्येविच की कुछ ऐसी आदत थी कि बहस की गरमागरमी में जो सवाल उनके अपने मन में उठते, वह उन्हीं के जवाब देने लगते और उन्हीं विचारों से सम्बन्धित अपने जीवन के अनुभव सुनाने लगते। किसी घटना की चर्चा करते समय अक्सर वह इस तरह खो जाते कि उन्हें चर्चा के उद्देश्य का भी ध्यान नहीं रहता था। बातें वह सदा बड़े उत्साह और निश्छलता से सुनाते थे। इस बार भी ऐसा ही हुआ।

"कम से कम अपने बारे में तो मैं यही कहूंगा। मेरे जीवन को ढालने में परिस्थितियों का नहीं, बल्कि किसी दूसरी ही चीज़ का हाथ रहा।"

"किस चीज़ का?" हमने पूछा।

"यह एक लम्बी दास्तान है। अगर आप यह समझना चाहते हैं, तो मुझे कहानी शुरू से आख़िर तक सुनानी पड़ेगी।"

"तो सुनाइये न।"

इवान वसील्येविच ने क्षण भर सोचकर सिर हिलाया।

"तो ठीक है," वह बोले, "मेरे सारे जीवन का रुख़ एक रात भर में, या यों कहें एक सुबह भर में ही बदल गया।"

"वह कैसे ?"

"हुआ यह कि मैं एक लड़की से प्रेम करने लगा था। इससे पहले भी मैं कई बार प्यार कर चुका था, पर रंग इतना गाढ़ा कभी न हुआ था। यह बात बहुत पहले की है, अब तो उसकी बेटियों तक की भी शादियां हो चुकी हैं। उसका नाम था ब०, वारेन्का ब०।" इवान वसील्येविच ने उसका पूरा नाम बताया। "पचास बरस की उम्र में भी वह देखते ही बनती थी, पर उस समय तो वह केवल अठारह वर्ष की थी और गज़ब ढाती थी—ऊंचा-लम्बा, सांचे में ढला-सा, छरहरा बदन, गर्वीला—हां, गर्वीला! वह सदा इस तरह तनी रहती, मानो झुकना उसके लिए असंभव हो। उसका सिर ज़रा-सा पीछे की ओर अकड़ा रहता। सामने खड़ी होती तो शानदार क़द और सलोने चेहरे के कारण रानी-सी लगती। वैसे ऐसी दुबली-पतली थी कि उसकी हड्डी-हड्डी नज़र आती थी। उसकी रोबीली चाल-ढाल से डर लगता, पर उसके होंठों पर हर वक़्त लुभावनी, मधुर मुस्कान खेलती रहती। उसकी आंखें बेहद ख़ूबसूरत थीं, हर वक़्त दमकती रहतीं। जवानी जैसे उमड़ी पड़ी थी। अदम्य आकर्षण था उस लड़की में।"

"इवान वसील्येविच तो सचमुच कविता करने लगे हैं, कविता!"

"चाहे जितनी भी कविता करूं, पर उसका सौन्दर्य मैं

उसमें बांध नहीं सकता। ख़ैर, यह एक दूसरी बात है। इसका मेरी कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं। जिन घटनाओं का मैं ज़िक्र करने जा रहा हूं, वे १८४० के आसपास घटीं। उस समय मैं एक प्रान्तीय विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मैं नहीं जानता कि बात अच्छी थी या बुरी, पर जो बहस-मुबाहिसे और गोष्ठियां आजकल होती हैं, वे उन दिनों हमारे विश्वविद्यालय में नहीं होती थीं। हम जवान थे और जवानों की तरह रहते थे–पढ़ते-पढ़ाते और जीवन का रस लूटते। मैं उन दिनों बड़ा हंसोड़ और हट्टा-कट्टा युवक था। इस पर तुर्रा यह कि अमीर भी था। मेरे पास एक बढ़िया घोड़ा था। मैं लड़कियों के साथ बर्फ़-गाड़ी में बैठकर पहाड़ों की ढलानों पर से फिसलने जाया करता था (तब स्केटिंग का फ़ैशन नहीं चला था)। पीने-पिलाने की पार्टियों में भी मैं अपने विद्यार्थी दोस्तों के साथ जाया करता। (उन दिनों हम शैम्पेन के अतिरिक्त और कुछ नहीं पीते थे। अगर जेब ख़ाली होता, तो हम कुछ भी न पीते। आजकल की तरह वोद्का तो हम छूते भी नहीं थे।) पर सबसे अधिक तो मुझे नाच और पार्टियां भाती थीं। मैं बहुत अच्छा नाचता था और देखने में भी बुरा न था।"

"इतनी नम्रता किसलिये दिखा रहे हैं?" एक महिला ने चुटकी ली। "हम सब ने आपकी उन दिनों की तसवीर देखी है। आप तो बड़े बांके जवान थे।"

"शायद रहा हूंगा, पर मेरे कहने का यह मतलब नहीं था। मेरा प्रेम नशे की हद तक जा पहुंचा। एक दिन मैं एक नाच-पार्टी में गया। पार्टी का आयोजन श्रोवटाइड के आख़िरी दिन गुबेर्निया के रईसों के मुखिया ने किया था। रईसों का मुखिया बड़े अच्छे स्वभाव का बूढ़ा आदमी था। अमीर था, कामिरहैर की उपाधि प्राप्त था और इस तरह की पार्टियां करने का ख़ासा शौक़ीन था। उसकी पत्नी भी उतने ही अच्छे स्वभाव की थी। जब मैं उनके घर पहुंचा, तो वह मेहमानों का स्वागत करने के लिए पति के साथ दरवाज़े पर खड़ी थी। मख़मली गाउन पहने थी और सिर पर हीरों की छोटी-सी जड़ाऊ टोपी लगा रखी थी। उसकी छाती और कन्धे गोरे और गुदगुदे थे और उन पर बढ़ती उम्र के चिन्ह नज़र आने लगे थे। कन्धे उघड़े हुए थे, उसी तरह जैसे तस्वीरों में चित्रित महारानी येलिज़वेता पेत्रोव्ना के। नाच-पार्टी बहुत शानदार रही। हॉल गैलरी वाला था। मशहूर साज़िन्दे मौजूद थे। वे संगीत-रसिक ज़मींदार के भू-दास थे। खाने को बहुत कुछ था और शैम्पेन की तो जैसे नदियां बह रही थीं। शैम्पेन का बहुत शौक़िन होते हुए भी मैंने वह नहीं पी—मुझे प्रेम का नशा जो था! मैं इतना नाचा, इतना नाचा कि थककर चूर हो गया। मैंने हर तरह के नाच में भाग लिया—क्वाड्रिल, वाल्ज़ और पोल्का में। और यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं सबसे अधिक वारेन्का के साथ नाचा। वह सफ़ेद गाउन

श्रौर गुलाबी रंग का कमरबन्द पहने थी। हाथों पर बढ़िया चमड़े के दस्ताने थे, जो उसकी नुकीली कोहनियों तक नहीं पहुंचते थे। पांवों में साटिन के सफ़ेद जूते पहने थी। मज़ूर्का नाच के वक़्त अनीसिमोव नाम का कम्बख़्त एक इंजीनियर मेरे साथ दांव खेल गया श्रौर वारेन्का के साथ नाचने लगा। इसके लिए मैंने उसे कभी माफ़ नहीं किया। ज्यों ही वह हॉल में श्राई, वह उसके पास जा पहुंचा श्रौर नाचने का प्रस्ताव किया। मुझे पहुंचने में थोड़ी देर हो गई थी: मैं पहले हेयर-ड्रेसर के पास, फिर दस्ताने ख़रीदने चला गया था। इसलिये वारेन्का के बजाय एक जर्मन लड़की के साथ मुझे मज़ूर्का नाचना पड़ा। किसी ज़माने में वह मेरे दिल को ज़रा छूती रही थी। मैं सोचता हूं कि उस शाम मैं उस लड़की के साथ बहुत बेरुख़ी से पेश श्राया। मैंने न तो उससे कोई बात की श्रौर न उसकी तरफ़ देखा ही। मेरी श्रांखें तो दूसरी ही लड़की पर गड़ी थीं – वही लड़की, जिसका क़द ऊंचा, बदन छरहरा श्रौर नाक-नक़्शा सांचे में ढला-सा था श्रौर जिसके बदन पर सफ़ेद गाउन श्रौर गुलाबी कमरबन्द था। उसके गालों में गढ़ पड़ते थे, चेहरे पर उत्साह श्रौर ख़ुशी की लाली थी श्रौर श्रांखों में मृदुता छलकती थी। केवल मेरी ही नहीं, सभी की श्रांखें उस पर जमी थीं। यहां तक कि स्त्रियां भी उसी को निहार रही थीं। बाक़ी सभी स्त्रियां

उससे हेच लगती थीं। उसके सौन्दर्य से प्रभावित हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता था।

"क़ायदे से देखा जाये, तो मज़ूर्का नाच के मामले में मैं उसका जोड़ीदार नहीं था, फिर भी ज़्यादा वक़्त मैंने उसी के साथ नाचने में बिताया। बिना किसी झेंप-संकोच के वह सारा कमरा लांघती सीधी मेरी ओर चली आती। मैं भी बिना निमंत्रण का इन्तज़ार किये उछलकर उसके पास जा पहुंचता। वह मुस्कराती। मैं उसके दिल की बात भांप जाता, इसके लिए वह मुस्कराकर मुझे धन्यवाद देती। पर जब मैं और एक दूसरा पुरुष नाच में उसके पास पहुंचते और वह मेरा गुप्त नाम न बूझ पाती, यानी जब वह मुझे नाच के साथी के रूप में न चुन पाती, तो अपने दुबले-पतले कंधे झटक देती और अपना हाथ दूसरे पुरुष की ओर बढ़ा देती। फिर मेरी ओर देखकर हल्के-से मुस्कराती, मानो अफ़सोस कर रही हो और मुझे ढाढ़स बन्धा रही हो।

"मज़ूर्का में वाल्ज़ आया, तो मैं बड़ी देर तक उसके साथ नाचता रहा। नाचते-नाचते उसकी सांस फूलने लगती, वह मुस्कराती और धीमे-से कहती «Encore»*। मैं उसके साथ नाचता जाता। मुझे लगता जैसे कि मैं हवा में तैर रहा हूं। मुझे अपने शरीर का ध्यान तक न रहा।"

---

* एक बार और (फ़्रेंच)।

"वाह, ध्यान तक न रहा। आपको ख़ासा ध्यान रहा होगा दोस्त, जब आपने उसकी कमर में हाथ डाला होगा। आपको अपने ही नहीं, बल्कि उसके भी शरीर का ध्यान रहा होगा," एक आदमी ने चुटकी ली।

इवान वसील्येविच का चेहरा सहसा तमतमा उठा और उसने ऊंची आवाज़ में कहा:

"तुम अपने बारे में, आजकल के युवकों के बारे में सोच रहे होगे। तुम लोग शरीर के सिवा और किसी बात के बारे में सोच ही नहीं सकते। हमारा ज़माना ऐसा नहीं था। ज्यों-ज्यों हमारा प्रेम किसी लड़की के लिए गहरा होता जाता था, हमारी नज़रों में उसका रूप एक देवी के समान होता जाता था। आज तुम्हें केवल टांगें और टखने और शरीर के अंग-प्रत्यंग ही नज़र आते हैं। तुम्हारी दिलचस्पी केवल अपनी प्रेमिका के नंगे शरीर में रह गई है। पर मैं, जैसे अलफ़ोंस कार्र ने लिखा है—सच मानो, वह बहुत अच्छा लेखक था—अपनी प्रेयसी को सदा कांसे के वस्त्रों में देखा करता था। उसकी नग्नता उघाड़ने के बजाय हम सदा, नूह के नेक बेटे के समान, उसे छिपाने की चेष्टा किया करते थे, पर यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी..."

"इसकी बातों की परवाह न कीजिये, आप अपनी कहते जाइये," एक दूसरे श्रोता ने कहा।

"हां, तो मैं उसके साथ नाचता रहा, मुझे वक़्त का कोई

अन्दाज़ न रहा। साज़िन्दे बुरी तरह थक गये थे – आप तो जानते हैं कि नाच के ख़ात्मे पर क्या हालत होती है – वे मज़ूर्का की ही धुन बजाते रहे थे। इस बीच वे बुज़ुर्ग, जो बैठक में ताश खेल रहे थे तथा स्त्रियां और दूसरे लोग उठ-उठकर खाने की मेज़ों की ओर जाने लगे थे। नौकर-चाकर इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। तीन बजने को हुए। हम इने-गिने बाक़ी मिनटों का रस निचोड़ लेना चाहते थे। मैंने फिर उससे नाचने का आग्रह किया और हम शायद सौवीं बार कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाचते चले गये।

"'भोजन के बाद मेरे साथ क्वाड्रिल नाचोगी न?' उसे उसकी जगह पर पहुंचाते हुए मैंने पूछा।

"'ज़रूर, अगर मां-बाप ने घर चलने का इरादा नहीं बना लिया तो,' उसने मुस्कराते हुए कहा।

"'मैं उन्हें ऐसा इरादा नहीं बनाने दूंगा,' मैंने कहा।

"'मेरा पंखा तो ज़रा देना,' वह बोली।

"'दिल चाहता है कि यह पंखा अपने पास ही रख लूं,' उसका सस्ता-सा सफ़ेद पंखा उसके हाथ में देते हुए मैंने कहा।

"'घबराओ नहीं, यह लो,' उसने कहा और पंखों में से एक पंख तोड़कर मुझे दे दिया।

"मैंने पंख ले लिया। मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा और रोम-रोम उसके प्रति कृतज्ञ हो उठा। मेरे मुंह से एक शब्द भी न निकला। आंखों ही आंखों में मैंने अपने दिल का

भाव जताया। उस समय मुझे असीम सुख और आनन्द का अनुभव हो रहा था। मेरा दिल जाने कितना बड़ा हो उठा था। मुझे लगा जैसे मैं पहले वाला युवक ही नहीं रहा। मुझे अनुभव हुआ कि मैं किसी दूसरे लोक का प्राणी हूं, जो कोई पाप नहीं कर सकता, केवल नेकी ही नेकी कर सकता है।

"मैंने वह पंख अपने दस्ताने में खोंस लिया और वहीं उसके पास खड़ा रह गया, मेरे पांव जैसे कील उठे।

"'वह देखो, वे लोग मेरे पिताजी से नाचने का आग्रह कर रहे हैं,' उसने एक ऊंचे-लम्बे, रोबीले आदमी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा। उसने कर्नल की वर्दी पहन रखी थी और दरवाज़े में खड़ा था। कन्धों पर चांदी के झब्बे थे। घर की मालकिन तथा अन्य स्त्रियों ने उसे घेर रखा था।

"'वारेन्का, इधर आओ,' घर की मालकिन ने कहा—उस महिला ने, जिसके सिर पर जड़ाऊ टोपी थी और कन्धे महारानी येलिज़वेता के से थे।

"वारेन्का दरवाज़े की ओर जाने लगी तो मैं भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

"'अपने पिता से कहो, ma chère * कि तुम्हारे साथ नाचें।' फिर कर्नल की ओर घूमकर मालकिन बोली: 'ज़रूर नाचो, प्योत्र व्लादिस्लाविच।'

---

* मेरी प्यारी (फ़्रेंच)।

"वारेन्का का पिता ऊंचा-लम्बा, ख़ूबसूरत, रोबीला व्यक्ति था। उम्र काफ़ी बड़ी थी। जान पड़ता था कि उसकी तन्दुरुस्ती का पूरा-पूरा ख़्याल रखा जाता है। दमकता चेहरा, à la Nicolas I* ऐंठी हुई सफ़ेद मूंछें, सफ़ेद ही क़लमें, जो मूंछों से जा मिली थीं। आगे की ओर कढ़े हुए बालों ने कनपटियां ढक रखी थीं। चेहरे पर लुभावनी, मधुर मुस्कराहट – बेटी के समान। वह मुस्कराता तो उसकी आंखें चमक उठतीं और होंठ खिल उठते। शरीर उसका बड़ा ख़ूबसूरत था, फ़ौजी अफ़सरों की तरह चौड़ी, आगे को उभरी हुई छाती और उस पर कुछेक तमग़े, कन्धे मज़बूत और टांगें लम्बी और गठी हुई। वह पुराने ढंग का फ़ौजी अफ़सर था। उसकी चाल-ढाल निकोलाई प्रथम के ज़माने के अफ़सरों की सी थी।

"हम दरवाज़े के पास पहुंचे तो कर्नल बार-बार कह रहा था – 'मुझे अब नाचने-वाचने का अभ्यास नहीं रहा।' इस पर भी उसने मुस्कराते हुए पेटी से तलवार उतारी, पास खड़े एक फुरतीले लड़के को थमा दी और अपने दायें हाथ पर चमड़े का दस्ताना चढ़ाया: 'सब बात नियम के अनुसार होनी चाहिए,' उसने मुस्कराते हुए कहा और फिर अपनी बेटी का हाथ अपने हाथ में लेकर, थोड़ा-सा घूमकर नाचने

* ज़ार निकोलाई प्रथम की तरह (फ़्रेंच)।

के अन्दाज़ में खड़ा हो गया और नाच की संगत के लिए संगीत का इन्तज़ार करने लगा।

"मज़ूर्का की धुन बजने लगी। कर्नल ने एक पांव से फ़र्श पर ज़ोर से ठोंका दिया और दूसरा पांव तेज़ी से घुमाकर नाचने लगा। उसकी ऊंची-लम्बी काया कमरे में वृत्त से बनाती हुई थिरकने लगी। कभी धीरे-धीरे, बड़े बांकपन से और कभी तेज़-तेज़, ज़ोर से वह एड़ियां ठकोरता। वारेन्का लता की तरह लचीली, उसके साथ-साथ तैरती, सफ़ेद रेशमी जूतोंवाला पैर उठाती और ताल पर अपने पिता के क़दमों के साथ-साथ कभी लम्बे डग भरती, तो कभी छोटे। सभी मेहमानों की निगाहें उनके एक-एक अंगविक्षेप पर गड़ी रहीं। मेरे हृदय में उस समय सराहना से अधिक गहरे आनंद की भावना रही। कर्नल के बूट देखकर तो मेरा मन जैसे द्रवित हो उठा। यों तो वे बढ़िया बछड़े के चमड़े के बने थे, परन्तु पंजे फ़ैशन के अनुसार नोकदार होने के बजाय, चौकोर थे। ज़ाहिर था कि उन्हें फ़ौज के मोची ने बनाया था। 'कर्नल फ़ैशनेबुल बूट नहीं पहनता है, साधारण बूट पहनता है, ताकि अपनी चहेती बेटी को अच्छे से अच्छे कपड़े पहना सके और उसे सोसाइटी में ले जा सके,' मैंने मन ही मन सोचा। इसी कारण कर्नल के बूटों को देखकर मेरा मन द्रवित हुआ था। कर्नल किसी ज़माने में ज़रूर ही अच्छा नाचता रहा होगा। अब उसका शरीर बोझिल हो गया था, टांगों में भी

वह लोच न रह गई थी, वह तेज़ और नाज़ुक मोड़ न ले सकता था, पर कोशिश ज़रूर कर रहा था। फिर भी उसने फुर्ती के साथ हॉल का दो बार चक्कर लगाया। इसके बाद उसने अपने दोनों पांव तेज़ी से खोले, फिर सहसा उन्हें एक साथ जोड़कर कुछ कठिनाई के साथ एक घुटने के बल बैठ गया और वारेन्का मुस्कराते हुए कर्नल के घुटने के नीचे आ गये स्कर्ट को छुड़ाकर बड़े बांकपन से नाचती हुई कर्नल के इर्द-गिर्द घूम गई। सभी ने ज़ोर से तालियां बजायीं। कर्नल को थोड़ी-सी कठिनाई का अनुभव हुआ, मगर वह उठ खड़ा हुआ और बड़े प्यार से दोनों हाथों में अपनी बेटी का मुंह लेकर उसका माथा चूमा। फिर वह उसे मेरी ओर ले आया। उसने मुझे अपनी बेटी का नाच का साथी समझा, पर मैंने इस स्थिति से इनकार किया। इस पर वह दुलार से मुस्कराया और अपनी तलवार पेटी में बांधते हुए बोला:

"'कोई बात नहीं, अब तुम इसके साथ नाचो।'

"जिस तरह शराब की बोतल से पहले कुछ बूंदें रिसती हैं और फिर धार फूट निकलती है, ठीक वैसे ही मेरे अन्तर से वारेन्का के प्रति प्यार उमड़ पड़ा। इस प्यार ने सारे विश्व को आलिंगन में भर लिया। हीरों की टोपी और उभरी हुई छाती वाली घर की मालकिन, घर के मालिक, मेहमानों, नौकर-चाकरों और मुझसे नाराज़ अनीसिमोव–सभी के प्रति मैंने असीम अनुराग का अनुभव किया। वारेन्का के पिता

साथ बग्घी में चढ़ते समय दिया था। इन चीज़ों पर निगाह पड़ते ही मुझे उसका चेहरा याद हो आता था। या तो उस समय जब नाच के लिए दो पुरुषों में से चुनते हुए उसने मेरा गुप्त नाम बूझ लिया था और मधुर स्वर में कहा था: 'गर्व है न तुम्हारा नाम?' और हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया था। या भोजन करते समय शैम्पेन के हल्के-हल्के घूंट भरते हुए उसने गिलास के ऊपर से मेरी ओर देखा था। उसकी आंखों में मृदुता छलक रही थी। पर उसका सबसे सुन्दर रूप मुझे वह लगा था, जब वह अपने पिता के साथ नाच रही थी। कैसी सुगमता से उसके साथ-साथ तैरती और अपने प्रशंसकों की ओर गर्व और उल्लास से देखती जा रही थी। यह गर्व और उल्लास का भाव जितना अपने प्रति था, उतना ही अपने पिता के प्रति भी। दोनों प्राणी, अपने आप ही, बिना किसी चेष्टा के मेरे दिल में समा गये थे और मुझे उनसे स्नेह हो गया था।

"मेरे भाई का देहान्त हो चुका है, पर उस समय हम दोनों एक साथ रहते थे। मेरे भाई की सोसाइटी में कोई रुचि न थी और वह इन नाच-पार्टियों में कभी भी नहीं जाते थे। उन दिनों स्नातक-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और बड़ा आदर्श-जीवन बिताते थे। उस समय वह तकिये पर सिर रखे गहरी नींद सो रहे थे। आधा चेहरा कम्बल से ढंका था। उन्हें देखकर मेरा दिल दया से भर उठा। वह मेरे सुख

से अनभिज्ञ थे और मैं उन्हें उसका भागीदार बना भी नहीं सकता था। मेरा नौकर, पेत्रूशा, मोमबत्ती जलाकर ले आया और कपड़े बदलवाने लगा। लेकिन मैंने उसे रुख़सत कर दिया। उसकी आंखें नींद से घुटी जा रही थीं और बाल बिखरे हुए थे। वह मुझे बहुत भला लगा। किसी तरह की आहट न हो इस ख़्याल से मैं दबे पांवों अपने कमरे में चला गया और बिस्तर पर जा बैठा। मैं बेहद ख़ुश था, यहां तक कि मेरे लिए सोना असम्भव हो रहा था। मुझे लगा जैसे कमरे में बड़ी गरमी है। बिना वर्दी उतारे मैं चुपचाप बाहर ड्योढ़ी में आ गया, ओवरकोट पहना और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आया।

"लगभग पांच बजे मैं नाच से लौटा था, और मुझे लौट भी लगभग दो घण्टे हो चले थे। इसलिए जब मैं बाहर निकला, तो दिन चढ़ चुका था। मौसम भी बिल्कुल श्रोवटाइड के दिनों का सा था—चारों तरफ़ धुन्ध छाई थी, सड़कों पर बर्फ़ पिघल रही थी और छतों से टप-टप पानी की बूंदें गिर रही थीं। उन दिनों ब० परिवार के लोग शहर के बाहर वाले हिस्से में रहा करते थे। उनका मकान एक खुले मैदान के सिरे पर था। दूसरे सिरे पर लड़कियों का एक स्कूल था। एक ओर लोगों के टहलने की जगह थी। मैं अपने घर के सामने वाली छोटी-सी गली लांघकर बड़ी सड़क पर आ गया। सड़क पर लोग आ-जा रहे थे। बर्फ़-गाड़ियों पर गाड़ीवान

लकड़ी के तख़्ते लादे लिये जा रहे थे। गाड़ियों से गहरी लकीरें पड़ रही थीं। घोड़ों पर पालिश किये साज़ कसे थे। उनके गीले सिर एक लय में हिल रहे थे, गाड़ीवान कन्धों पर छाल की चटाइयां ओढ़े और बड़े-बड़े बूट चढ़ाये गाड़ियों के साथ-साथ कीचड़ में धीरे-धीरे चले जा रहे थे। मुझे हर चीज़ प्यारी और महत्त्वपूर्ण लग रही थी, यहां तक कि सड़क के दोनों तरफ़ खड़े घर भी, जो धुन्ध में बड़े ऊंचे नज़र आ रहे थे।

"मैं उस मैदान के पास जा पहुंचा, जहां उनका मकान था। मुझे वहां एक सिरे पर, जहां लोग टहलने जाया करते थे, कोई बड़ी और काली-सी चीज़ नज़र आई। साथ ही ढोल और बांसुरी बजने की आवाज़ भी कानों में पड़ी। वैसे तो हर घड़ी मेरा मन ख़ुशी से नाचता रहा था और मज़ूर्का की धुन जब-तब मेरे कानों में गूंजती रही थी। पर यह संगीत कुछ अलग ही लगा—कर्कश और भद्दा-सा।

"'यह भला क्या हो सकता है?' मैंने सोचा। मैं उसी आवाज़ की दिशा में फिसलनी सड़क पर बढ़ा। मैं कोई सौ क़दम गया हूंगा कि मुझे धुन्ध में लोगों की भीड़ नज़र आई। बात साफ़ हुई। वे फ़ौजी सिपाही थे। मैंने सोचा कि सुबह की क़वायद कर रहे होंगे। मेरे साथ-साथ सड़क पर एक लोहार चला जा रहा था। वह एप्रन और जाकेट पहने था। कपड़ों पर जगह-जगह तेल के धब्बे थे। उसके हाथ में बड़ी-सी

गठरी थी। मैं उसके साथ हो लिया। पास जाकर मैंने देखा कि सैनिकों की दो क़तारें आमने-सामने खड़ी हैं। उन्होंने काले कोट पहन रखे हैं, उनके हाथों में बन्दूक़ें हैं और वे चुपचाप खड़े हैं। उनके पीछे एक बांसुरी बजानेवाला और एक ढोल पीटनेवाला है और वही कर्कश और भद्दी धुन बजा रहे हैं।

"हम रुक गये।

"'ये क्या कर रहे हैं?' मैंने लोहार से पूछा।

"'एक तातार को सज़ा दी जा रही है। उसने फ़ौज से भागने की कोशिश की थी,' लोहार ने ग़ुस्से के साथ जवाब दिया और क़तारों के दूसरे सिरे की ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

"मैं भी उसी ओर देखने लगा। दो क़तारों के बीच कोई भयानक चीज़ हमारी ओर बढ़ती आ रही थी। वह एक आदमी था, कमर तक नंगा, हाथ उसे ले जानेवाले दो सैनिकों की बंदूक़ों के साथ बंधे हुए थे। उनके साथ-साथ ऊंचे-लम्बे क़द का एक अफ़सर चला आ रहा था। वह ओवरकोट पहने था और सिर पर फ़ौजी टोपी थी। यह अफ़सर मुझे परिचित-सा लगा। अपराधी की पीठ पर दोनों तरफ़ से हंटर पड़ रहे थे। उसका शरीर कांप-कांप जाता और उसके पांव पिघलती बर्फ़ में बार-बार धंस जाते। इस तरह वह धीरे-धीरे आगे को सरकता रहा। बीच-बीच में वह पीछे की ओर दुबक-सा जाता, तो दोनों फ़ौजी, जो बन्दूक़ों के साथ बंधे

हुए उसे ले जा रहे थे, उसे आगे को धकेल देते और जब वह आगे की ओर भहराने लगता, तो पीछे की ओर खींच लेते ताकि वह गिरे नहीं। साथ-साथ, स्थिर क़दम रखता वह ऊंचे-लम्बे क़द का अफ़सर बढ़ता आ रहा था। वह भूलकर भी पीछे न रहता। मेरी नज़र उसके दमकते चेहरे, उजली मूंछों और क़लमों पर पड़ी। मैंने फ़ौरन पहचान लिया कि यह वारेन्का का बाप है।

"हंटर के हर वार पर अपराधी का चेहरा दर्द से ऐंठ उठता, वह बेचैन होकर उस ओर देखता, जहां से हंटर पड़ा था। उसका मुंह खुला रहता। उसके सफ़ेद दांत दमक रहे थे। बार-बार वह कुछ कहता। जब तक कि वह मेरे नज़दीक नहीं आ गया, मुझे उसके शब्द ठीक-ठीक सुनाई नहीं दिये। वह बोल नहीं, सिसक रहा था। जब वह मेरे नज़दीक पहुंचा, तो मैंने सुना, 'रहम करो, भाइयो। भाइयो, कुछ रहम करो'। पर भाइयों को कोई रहम नहीं आ रहा था। वह ऐन मेरे सामने आ पहुंचा। एक सैनिक ने बड़ी दृढ़ता से आगे बढ़कर तातार की पीठ पर इतने ज़ोर से हंटर मारा कि उसकी आवाज़ हवा में गूंज गई। तातार आगे को गिरनेवाला था, पर फ़ौजियों ने झटके से उसे थाम लिया। फिर दूसरी तरफ़ से एक हंटर और पड़ा, इसके बाद फिर इस तरफ़ से, और फिर उस तरफ़ से। कर्नल उसके साथ-साथ चलता रहा। कभी वह अपने पांवों की ओर देखता और कभी अपराधी

की ओर। हवा में गहरी सांस लेता, गाल फुलाता और फिर धीरे-धीरे होंठ सिकोड़कर मुंह से हवा निकालता। जब यह जुलूस मेरे पास से निकल गया, तो मुझे क्षण भर के लिए सैनिकों की क़तार के बीच से अपराधी की पीठ की झलक मिली। वह रंग-बिरंगी, गीली, लाल और अस्वाभाविक थी कि मुझे विश्वास न हुआ कि यह एक इन्सान का शरीर है।

"'हे भगवान!' मेरे पास खड़ा लोहार बुदबुदाया।

"जुलूस बढ़ता गया। उस गिरते-पड़ते, बार-बार दया की भीख मांगते इन्सान पर दोनों तरफ़ से कोड़े पड़ते गये। ढोल बजते गये, बांसुरी में से वही तीखी धुन निकलती रही और रोबीला कर्नल उसी तरह रोब-दाब से अपराधी के साथ चलता गया। सहसा कर्नल रुक गया और तेज़ी से एक सैनिक की ओर बढ़ा।

"'मैं तुम्हें चखाऊंगा ढील दिखाने का मज़ा!' उसकी क्रोध भरी आवाज़ मेरे कानों में पड़ी।

"उसने अपने मज़बूत, चमड़े के दस्ताने से लैस हाथ से नाटे-छोटे, दुबले-पतले सैनिक के मुंह पर तमाचे पर तमाचे जड़ने शुरू कर दिये, क्योंकि सैनिक का हंटर तातार की लहूलुहान पीठ पर पूरे ज़ोर से नहीं पड़ा था।

"'नये हंटर लाओ!' कर्नल ने चिल्लाकर कहा, मुड़ा और उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। मुझे देखकर अनदेखा करते हुए उसने बड़े ग़ुस्से से त्यौरी चढ़ाकर झट से मेरी ओर पीठ कर

ली। मुझे बड़ी शर्म महसूस हुई। मेरी समझ में न आया कि मुड़ूं तो किस ओर को? मुझे लगा कि जैसे मैं कोई घिनौना काम करते पकड़ा गया हूं। मैं सिर झुकाये तेज़ चाल से घर लौट आया। रास्ते भर मेरे कानों में ढोल और बांसुरी की कर्कश आवाज़ गूंज रही। 'रहम करो, भाइयो!' की दर्दभरी चीख़ और 'मैं तुम्हें चखाऊंगा ढील दिखाने का मज़ा!'—कर्नल की ग़ुस्से और दम्भ से भरी चिल्लाहट कानों के पर्दे फाड़ती रही। मेरा दिल इस तरह दर्द से भर उठा कि मुझे मतली होने लगी, यहां तक कि मुझे बार-बार राह में ठिठकना पड़ा। रह-रहकर जी चाहता कि मैं क़ै कर किसी तरह इस दृश्य से उपजी घृणा को अपने अन्दर से बाहर निकाल दूं। मुझे याद नहीं कि मैं कैसे घर पहुंचा और कैसे जाकर बिस्तर पर पड़ गया। पर ज्यों ही आंख लगने को हुई, वह दृश्य फिर मेरी आंखों के सामने घूमने लगा, सारी आवाज़ें फिर मुझे सुनाई देने लगीं और मैं उठकर पलंग पर बैठ गया।

"'हो न हो, कोई न कोई बात ऐसी ज़रूर है, जिसे वह आदमी जानता है, पर मैं नहीं जानता,' कर्नल के बारे में सोचते हुए मैंने मन ही मन कहा। 'अगर उसकी तरह सब कुछ मेरी समझ में भी आ जाये, तो शायद इस तरह मेरा दिल न दुखे।' पर हज़ार चेष्टा करने पर भी वह बात मेरी समझ में नहीं आई, जो वह कर्नल समझता था। नतीजा

यह कि कहीं शाम को जाकर मेरी आंख लगी और सो भी तब, जब मैं एक मित्र के घर गया और मैंने अन्धाधुन्ध शराब पी ली।

"आप क्या समझते हैं कि मैंने इस दृश्य से कोई बुरा नतीजा निकाला? हरगिज़ नहीं। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यदि वह सारा कृत्य ऐसे विश्वास के साथ और हर आदमी द्वारा आवश्यक मानकर किया गया है, तो कोई न कोई बात ऐसी ज़रूर है, जिसका पता बाक़ी सब को तो है, पर केवल मुझे नहीं। आख़िरकार मैं भी इस रहस्य का भेद पाने की कोशिश करने लगा। पर वह रहस्य मेरे लिए सदा रहस्य ही बना रहा। और चूंकि मैं उसे समझ नहीं पाया, इसलिए मैं फ़ौज में भरती भी नहीं हुआ, हालांकि मैं फ़ौज की नौकरी करना चाहता था। वैसे फ़ौज की नौकरी ही क्या, मैं तो कोई और नौकरी भी नहीं कर पाया। बस, मैं कुछ भी नहीं बन पाया!"

"हम ख़ूब जानते हैं कि आप क्या कुछ बन पाये हैं," एक मेहमान बोला, "यह कहना ज्यादा मुनासिब होगा कि अगर आप न होते, तो जाने कितने ही लोग कुछ न बन पाते।"

"यह बड़ी फ़ज़ूल-सी बात आपने कही है," इवान वसील्येविच ने सचमुच चिढ़कर कहा।

"ख़ैर, तो आपके प्रेम का क्या हुआ?" हमने पूछा।

"मेरा प्रेम ? मेरे प्रेम को तो उसी दिन पाला मार गया। जब वह लड़की मुस्कराती हुई सोच में डूब जाती, जैसा कि अक्सर उसके साथ होता था, तो मैदान में खड़ा कर्नल मेरी आंखों के सामने आ जाता। मैं सकपका उठता और मेरा दिल बेचैन होने लगता। होते-होते मैंने उससे मिलना छोड़ दिया और धीरे-धीरे मेरा प्रेम मर गया। ऐसी ही बातें कभी-कभी समूचे जीवन का रुख़ बदल देती हैं, और आप हैं कि कहे जा रहे हैं कि जो कुछ करती हैं बस, परिस्थितियां ही करती हैं," उसने अन्त में कहा।

सल्तिकोव-श्चेद्रीन, मिख़ाईल येवग्राफ़ोविच (१८२६–१८८९) – व्यंग्यकार के नाते विश्व साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान रखते हैं और ७ वें दशक के रूसी क्रान्तिकारी प्रजातन्त्रवाद के प्रतिनिधि हैं। 'श्रीमान गोलोवल्योव', 'एक नगर की कहानी', 'पोशेख़ोन का पुराना ढर्रा' आदि उपन्यासों के अलावा व्यंग्यात्मक संग्रह 'कहानियां' (लेखनकाल ९ वां दशक) बहुत विख्यात है। 'किस्सा यह कि एक देहाती ने दो जनरलों का कैसे पेट भरा' इसी कहानी-संग्रह से लिया गया है।

सल्तिकोव-श्चेद्रीन
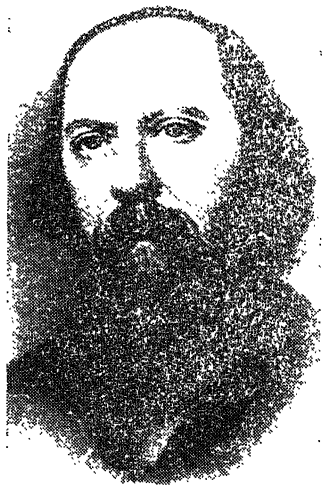
क़िस्सा यह कि एक देहाती ने दो जनरलों का कैसे पेट भरा

कहते हैं कि कभी किसी ज़माने में दो जनरल थे। दोनों ही थे बड़े तरंगी और मनमौजी। जाने एक बार उन्हें क्या तरंग आई, क्या धुन समाई कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुंचे जहां आदमी का नामोनिशान भी नहीं था।

दोनों जनरलों ने उम्र भर किसी एक दफ़्तर में नौकरी की थी। वे वहीं जन्मे, वहीं उनका पालन-पोषण हुआ और उसी दफ़्तरी घेरे में बन्द रहे। परिणाम यह कि कूपमंडूक हो

गये, न कुछ जानें, न समझें। सिर्फ़ इन शब्दों तक ही दौड़ थी उनकी – "अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाता हूं।"

कुछ वक़्त गुज़रा, उस दफ़्तर की ज़रूरत न रही, उसे बन्द कर दिया गया। इन दोनों जनरलों की वहां से छुट्टी हो गई। जब करने-धरने को कुछ न रहा, तो दोनों पीटर्सबर्ग की पोद्याचेस्काया सड़क पर आ बसे। दोनों ने अलग-अलग मकान में डेरा जमाया, दोनों ने अलग-अलग बावर्चिन रखी और दोनों अपनी पेंशन पाने लगे। एक दिन अचानक हुआ क्या कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुंचे, जहां न आदमी था, न आदमज़ाद। आंख खुली तो क्या देखते हैं कि दोनों एक ही रज़ाई ओढ़े पड़े हैं। ज़ाहिर है कि शुरू में तो दोनों एक-दूसरे का मुंह ताकते रहे, कुछ न समझ पाये कि क़िस्सा क्या है। फिर लगे ऐसे बतियाने कि मानो कुछ हुआ ही न हो।

"श्रीमान्, अभी-अभी एक अजीब-सा सपना देखा है मैंने," एक जनरल ने कहा। "देखता क्या हूं कि एक ऐसे द्वीप में जा पहुंचा हूं, जहां आदमी का नाम है न निशान..."

इतना कहकर वह एकदम उछल पड़ा। दूसरा जनरल भी उछला।

"हाय राम! यह माजरा क्या है! कहां हैं हम?" दोनों जनरल एक साथ ही चिल्ला उठे। बिल्कुल पराई-पराई-सी थी उनकी आवाज़।

यह जानने के लिए कि सपना है या सत्य लगे वे एक-दूसरे को छूने। मगर वे जितना अपने को यह समझाने की कोशिश करते कि वह सपने से अधिक कुछ नहीं था, उतना ही उन्हें अफ़सोस के साथ यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ता कि वह ठोस हक़ीक़त है।

उनके सामने एक तरफ़ तो समुद्र और दूसरी तरफ़ ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा था। ज़मीन के इस टुकड़े के आगे भी जहां तक नज़र जाती थी सागर ही लहराता हुआ दिखाई दे रहा था। दफ़्तर बन्द होने के बाद दोनों जनरलों के रोने का यह पहला मौक़ा था।

दोनों जनरलों ने ध्यान से एक-दूसरे को देखा। क्या देखते हैं कि वे सोने के समय की पोशाक पहने हैं और दोनों के गले में चमचमा रहे हैं सरकारी तमग़े।

"अब अगर गर्म-गर्म कॉफ़ी आ जाये, तो क्या मज़ा रहे!" एक जनरल कह ही उठा। मगर तभी उसे याद हो आया कि उसके साथ कैसा मज़ाक़ हुआ है, जो न कभी किसी ने देखा होगा, न सुना होगा। वह दूसरी बार रो पड़ा।

"मगर अब हम करेंगे तो क्या?" आंसू बहाते हुए वह कहता गया। "क्या झटपट रिपोर्ट लिखकर तैयार की जाये? पर क्या लाभ होगा उससे?"

"देखिये मैं बताऊं, श्रीमान्," दूसरे जनरल ने जवाब दिया, "आप जायें पूरब को और मैं जाऊंगा पच्छिम को।

शाम को फिर इसी जगह मिलेंगे। हो सकता है कि कोई सूरत निकल ही आये!"

चुनांचे पूरब और पश्चिम की ढूंढ़-तलाश शुरू हुई। उन्हें याद आया कि कैसे एक बार एक बड़े अफ़सर ने समझाया था—"अगर पूरब का पता लगाना चाहते हो, तो उत्तर की ओर मुंह करके खड़े हो जाओ। तुम्हारे दायें हाथ को होगा पूरब।" अब उत्तर की खोज शुरू हुई, इधर घूमे और उधर मुड़े, सभी दिशाओं में घूम-घूमकर हार गये। मगर चूंकि सारी उम्र तो गुज़री थी दफ़्तर में बन्द रहकर, इसलिये न पूरब मिला, न उत्तर।

"देखिये श्रीमान्, ऐसा करते हैं कि आप जायेंगे दायें को और मैं जाऊंगा बायें को। यह ज़्यादा ठीक रहेगा।" एक जनरल ने दूसरे से कहा। यह सुझाव देनेवाला जनरल दफ़्तर में काम करने के अलावा फ़ौजियों के बच्चों के स्कूल में कुछ अर्से तक सुलेख का अध्यापक भी रहा था। इसकी बदौलत वह कुछ अधिक समझदार था।

कहना था कि चल दिये। दायें हाथ को जानेवाले जनरल ने देखा कि पेड़ हवा में झूल रहे हैं, फलों से टहनियां लदी हैं। जनरल का मन हुआ कि फल खाये, बेशक एक सेब ही। मगर वे इतने ऊंचे थे कि उन तक पहुंच पाना बहुत कठिन था। फिर भी उसने चढ़ने की कोशिश की, मगर कुछ हाथ न लगा। क़मीज़ तार-तार होकर रह गई। जनरल एक सोते

के निकट पहुंचा। देखा कि वहां बड़ी प्यारी-प्यारी मछलियां हैं बिल्कुल वैसी, जैसी कि राजधानी के तालाब में। इधर-उधर छपछपा रही थीं वे अठखेलियां करती हुईं।

"काश कि पोद्याचेस्काया सड़क वाले मेरे घर में ऐसी मछलियां होतीं!" जनरल ने सोचा और उसके मुंह से पानी भर आया।

जनरल पहुंचा जंगल में—वहां जंगली मुर्ग़े सीटियां बजा रहे थे, तीतर-बटेर कट-कट करते और ख़रगोश फुदकते फिर रहे थे।

"हे भगवान! जिधर देखो ख़ुराक! जहां देखो ख़ुराक!" जनरल ने कुछ ऐसे महसूस किया कि उबकाई आई कि आई।

आख़िर करता तो क्या! मिलने के लिए तय की हुई जगह पर ख़ाली हाथ लौटना पड़ा। वहां पहुंचा तो देखा कि दूसरा जनरल पहले से ही वहां विराजमान था।

"कहिये, श्रीमान्, कुछ काम बना?"

"'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' अख़बार की एक पुरानी कापी हाथ लगी है, बस और कुछ नहीं।"

दोनों जनरल फिर से सोने के लिये लेट गये। मगर पेट में तो चूहे कूद रहे थे, नींद भला कैसे आती। कभी उन्हें यह ख़्याल परेशान करता कि कौन उनकी जगह पेंशन वसूलेगा, तो कभी दिन के वक़्त देखे हुए फल, मछलियां, मुर्ग़े, तीतर-बटेर और ख़रगोश उनकी आंखों के सामने घूमने लगते।

"कौन इस बात की कल्पना कर सकता था, श्रीमान् कि इन्सान की ख़ुराक अपनी असली शक्ल में हवा में उड़ती और पानी में तैरती फिर रही है, पेड़ों पर लदी पड़ी है?" एक जनरल ने कहा।

"हां," दूसरे जनरल ने जवाब दिया, "मानना ही पड़ता है और मैं अब तक यही समझता रहा हूं कि पावरोटी जिस शक्ल में सुबह कॉफी के साथ मिलती है, उसी शक्ल में तैयार पैदा होती है।"

"तो नतीजा यह निकला कि मिसाल के तौर पर यदि कोई बटेर खाना चाहता हो, तो सबसे पहले उसे पकड़े, उसकी गर्दन पर छुरी चलाये, उसे साफ़ करे और भूने... मगर यह सब किया जाये तो कैसे?"

"बिल्कुल सही फ़र्माया आपने," दूसरे जनरल ने कहा। "यह सब हो तो कैसे?"

दोनों चुप हो गये और सोने की कोशिश करने लगे। मगर क्या मजाल कि भूख नींद को पास भी फटकने दे। आंखों के सामने तो घूम रहे थे जंगली मुर्ग़, बत्तखें और सूअर – धीमी-धीमी आंच पर सेंके हुए – खीरों, अचारों और दूसरे सलादों में सजे हुए।

"मेरा तो ऐसे मन होता है कि अपने जूते खा जाऊं," एक जनरल ने कहा।

"अगर काफ़ी अर्से तक पहने हुए हों, तो दस्ताने भी कुछ

बुरे नहीं रहते!" दूसरे जनरल ने गहरी सांस लेकर कहा।

अचानक दोनों जनरलों ने एक-दूसरे को बुरी तरह से घूरा। दोनों की आंखों में ख़ून की प्यास चमकी, दोनों के दांत बजे और छाती से घरघराई-सी आवाज़ निकली। दोनों धीरे-धीरे एक-दूसरे की तरफ़ बढ़ने लगे और पलक झपकते में एक-दूसरे को फाड़ खाने के लिये झपट पड़े। कपड़े चिथड़े होकर इधर-उधर गिरने लगे, वे ज़ोरों से चीख़ने-चिल्लाने लगे। स्कूल में सुलेख का अध्यापक रह चुकनेवाले जनरल ने अपने साथी का तमग़ा झपट लिया और आन की आन में उसे निगल गया। मगर जब उन्होंने ख़ून बहता देखा, तो जैसे उन्हें होश आया।

"राम, राम!" दोनों ने एक साथ ही कहा। "ऐसे तो हम दोनों एक-दूसरे को नोच खायेंगे!"

"मगर हम यहां आ कैसे फंसे! कौन था वह बदमाश, जिसने हमारे साथ ऐसा भद्दा मज़ाक़ कर डाला!"

"श्रीमान्, किसी तरह बातचीत द्वारा वक़्त काटना चाहिये, वरना यहां ख़ून ही ख़ून नज़र आयेगा!" एक जनरल ने कहा।

"तो शुरू कीजिये!" दूसरे जनरल ने जवाब दिया।

"मसलन इस मसले पर आपका क्या विचार है – सूरज पहले निकलता है और फिर छिपता है, इसके उलट क्यों नहीं होता?"

"आप भी बड़े अजीब आदमी हैं, श्रीमान्! आप भी तो पहले उठते हैं, फिर दफ़्तर जाते हैं, वहां क़लम घिसते हैं और फिर आराम करते हैं।"

"मगर क्यों भला इसके उलट न हो—मैं पहले नींद का मज़ा लूं, तरह-तरह के सपने देखूं और फिर बिस्तर से उठूं?"

"हुम... हां, मगर मानना पड़ता है कि मैं जब तक दफ़्तर में काम करता था, हमेशा इसी तरह सोचा करता था—लो सुबह हो गई, फिर दिन होगा, फिर शाम का खाना खाया जायेगा और फिर आराम किया जायेगा।"

खाने का ज़िक्र आते ही दोनों पर फिर उदासी छाने लगी और बातचीत जहां से शुरू हुई थी, वहीं लौट आई।

"मैंने किसी डाक्टर से सुना था कि इन्सान बहुत समय तक अपने शरीर में संचित रसों के सहारे ज़िन्दा रह सकता है," एक जनरल ने फिर से बातचीत शुरू की।

"यह कैसे होता है?"

"यह ऐसे होता है—शरीर में संचित रसों से दूसरे रस पैदा होते हैं। इन रसों से आगे और रसों का जन्म होता है। इसी तरह यह चक्र चलता जाता है, जब तक कि ये रस पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते..."

"जब वे समाप्त हो जाते हैं, तब?"

"तब कोई न कोई ख़ुराक मिलनी ही चाहिये।"

"छि:!"

मतलब यह कि वे बातचीत चाहे कुछ भी क्यों न शुरू करते, वह घूम-फिरकर खाने से जा जुड़ती और उनकी भूख और अधिक चमक उठती। उन्होंने बातचीत बन्द करने का फ़ैसला किया। तभी उन्हें 'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' अख़बार की पुरानी कापी का ध्यान आया। लगे दोनों उसे बड़े चाव से पढ़ने।

एक जनरल ने उत्तेजित आवाज़ में पढ़ना शुरू किया –

"हमारी प्राचीन राजधानी के माननीय राज्यपाल ने कल एक शानदार दावत की। सौ व्यक्ति खाने पर हाज़िर थे और प्रबन्ध ऐसा था कि बस कमाल! आश्चर्यचकित कर देनेवाली इस दावत में सभी देशों के एक से एक बढ़कर उपहार उपस्थित थे। ये उपहार मानो एक-दूसरे से भेंट करने आये थे। कैसी-कैसी ज़ायक़ेदार चीज़ें थीं वहां – शेक्स्ना नदी की सुनहरी स्तेरल्याद मछली, काकेशिया के जंगलों के तीतर-बटेर और फ़रवरी के महीने में हमारे उत्तर में दुर्लभ स्ट्राबेरियां भी..."

"छिः छिः, हे भगवान! श्रीमान्, इसके सिवा क्या कोई दूसरी ख़बर नहीं खोज सकते थे?" दूसरा जनरल खीझकर चीख उठा। अपने साथी के हाथ से अख़बार छीनकर वह ख़ुद पढ़ने लगा –

"तूला नगर से ख़बर मिली है – कल ऊपा नदी में स्टरजन मछली के पकड़े जाने की ख़ुशी में स्थानीय क्लब में एक

शानदार समारोह मनाया गया (इस नदी में स्टरजन मछली का पकड़ा जाना एक ऐसी अनोखी घटना है, जिसकी बड़े-बूढ़ों तक को याद नहीं। इस मछली की इस प्रदेश के थानेदार से तुलना की जाती है)। इस मछली को लकड़ी की एक बहुत बड़ी तश्तरी में रखकर मेज़ पर टिकाया गया। इसके चारों तरफ़ खीरे लगे हुए थे और मुंह में सब्ज़ी थी। डा० 'पी' साहब के हाथ में इस समारोह का प्रबन्ध था। उन्होंने इस बात की भरसक कोशिश की कि हर व्यक्ति को इस मछली का टुकड़ा चखने को मिले। चटनियां ऐसी लज़ीज़ थीं कि हर आदमी होंठ चाटता रह गया..."

"क्षमा कीजिये, श्रीमान्, किन्तु लगता यही है कि विषय का चुनाव करने में आपने भी सावधानी से काम नहीं लिया!" पहले जनरल ने कहा और उसके हाथ से अख़बार लेकर ख़ुद पढ़ने लगा—

"व्यात्का नगर से समाचार मिला है—यहां के एक पुराने निवासी ने मछली का शोरबा बनाने की एक नई विधि खोज निकाली है। एक बड़ी ट्रेट मछली लेकर उसकी खाल इस तरह उधेड़ें कि दर्द के मारे उसकी कलेजी फैल जाये। तब..."

दोनों जनरल सिर थामकर बैठ गये। वे जिस चीज़ की तरफ़ भी अपना ध्यान लगाते, वही उन्हें खाने-पीने की याद दिलाती। सच तो यह है कि स्वयं उनके विचार उनके विरुद्ध षडयन्त्र रच रहे थे। कारण कि वे भुने हुए मांस को जितना

अधिक अपने दिमाग़ से निकालने की कोशिश करते, उतनी ही अधिक उसकी याद उन्हें सताती।

वह जनरल जो सुलेख का अध्यापक रह चुका था, अचानक उसके दिमाग़ ने कल्पना की उड़ान भरी...

"श्रीमान्!" उसने ख़ुश होकर कहा। "अगर हम कोई देहाती ढूंढ़ लायें, तो कैसा रहे?"

"क्या मतलब आपका... कैसा देहाती?"

"यही आम देहाती... जैसे कि होते हैं आम गंवार देहाती! वह अभी हमारे लिये पावरोटी ला देगा, मछलियां और परिन्दे पकड़ लायेगा!"

"हुम... देहाती... ख़्याल तो अच्छा है। मगर जब यहां कोई है ही नहीं, तो आयेगा कहां से?"

"देहाती न हो – यह कैसे हो सकता है! देहाती हर जगह होते हैं, ज़रूरत है सिर्फ़ उन्हें खोजने की! यहीं, कहीं न कहीं, छिपा बैठा होगा वह कामचोर!"

इस ख़्याल से दोनों जनरल ख़ुशी के मारे उछल पड़े, जोश में आकर झटपट उठे और देहाती की तलाश में चल दिये।

देर तक वे जहां-तहां भटकते रहे, मगर कोई देहाती न मिला। आख़िर उन्हें मोटे आटे की रोटी और कच्चे चमड़े की गन्ध आई। वे उसी तरह चल दिये। देखते क्या हैं कि एक पेड़ के नीचे एक लम्बा-तड़ंगा आदमी पड़ा है, पेट फुलाये, सिर के नीचे बांह का तकिया बनाये। बहुत ही बेशर्मी से हरामख़ोरी

कर रहा था पड़ा हुआ। जनरल तो उसे इस तरह कामचोरी करते देखकर आग-बगूला हो उठे।

"उठ रे आलसी!" दोनों जनरल उसपर झुक गये। "जैसे बहरा हो! अरे देखता नहीं यहां दो जनरल पिछले दो दिनों से भूख से दम तोड़ रहे हैं! उठकर लग जा काम से!"

देहाती उठकर खड़ा हुआ। देखता क्या है कि जनरल तो गर्ममिज़ाज आदमी हैं। उसका निकल भागने को मन हुआ, मगर जनरल उसपर ऐसे टूट पड़े कि निकल भागना मुमकिन न रहा।

जुट गया वह उनकी सेवा करने में।

पहला काम तो उसने यह किया कि पेड़ पर चढ़ गया और जनरलों के लिये ख़ूब पके हुए दस-दस सेब तोड़ लाया। ख़ुद अपने लिये उसने एक खट्टा-सा सेब रख लिया। फिर उसने ज़मीन खोदी और उसमें से आलू निकाले। इसके बाद उसने लकड़ी के दो टुकड़े लिये, उन्हें रगड़कर उनमें से आग पैदा की। फिर उसने अपने बालों का जाल बुना और एक बटेर फांस लिया। आख़िर उसने आग जलाकर तरह-तरह के इतने खाने तैयार कर दिये कि ख़ुद जनरल भी यह सोचे बिना न रह सके – इस निकम्मे को भी कुछ हिस्सा तो मिलना ही चाहिये।

जनरलों ने इस देहाती को तरह-तरह के यत्न करते देखा, उनके दिल बाग़-बाग़ हो गये। वे यह तक भूल गये कि एक

दिन पहले तो वे भूख से मरे जा रहे थे। अब उन्हें ख़्याल आया कि जनरल होना क्या अच्छी बात है, हर जगह काम निकाला जा सकता है!

"जनरल साहब, आप ख़ुश तो हैं न?" आलसी गंवार ने उनसे पूछा।

"हां, हम ख़ुश हैं, दोस्त! बहुत मेहनत से काम किया है तुमने!" जनरलों ने जवाब दिया।

"इजाज़त हो तो मैं अब थोड़ा आराम कर लूं?"

"हां, हां, तुम्हें इजाज़त है आराम करने की। मगर जाने से पहले एक रस्सी बनाकर दे जाओ।"

देहाती ने झटपट जंगली सन इकट्ठा किया, उसे पानी में भिगोकर नर्माया, पीट-पीटकर उसकी मूंज बना डाली। शाम होते तक रस्सी तैयार हो गई। जनरलों ने इसी रस्सी से देहाती को पेड़ से बांध दिया कि कहीं भाग न जाये। वे ख़ुद आराम करने के लिये लेट गये।

एक दिन गुज़रा, दूसरा दिन गुज़रा। इसी बीच देहाती ऐसा होशियार हो गया कि लगा अंजलि में शोरबा तैयार करने! हमारे जनरलों की ख़ूब मज़े में कटने लगी, मोटे-ताज़े हो गये, तोंद बढ़ने लगी और रंग निखर आया। अब वे आपस में बातचीत करते – यहां तो हर चीज़ तैयार मिलती है और इसी बीच पीटर्सबर्ग में हमारी पेंशनें हैं कि जमा होती चली जा रही हैं।

"क्या ख़्याल है आपका, श्रीमान्, यह जो बाबुल की मीनार* की चर्चा की जाती है, वह हक़ीक़त है या कोरा मनगढ़न्त क़िस्सा ?" नाश्ते के बाद एक जनरल ने दूसरे से पूछा।

"मेरे ख़्याल में तो हक़ीक़त ही है, श्रीमान्! वरना दुनिया में बहुत-सी अलग-अलग भाषाओं के होने का क्या कारण हो सकता है!"

"तब तो यह भी सही है कि प्रलय हुआ था?"

"बेशक प्रलय हुआ था, वरना क्या कारण हो सकता है कि प्रलय के पहले के दरिन्दे आज ज़िन्दा नहीं हैं। और फिर 'मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती' लिखता है कि..."

"अब अगर 'मोस्कोव्स्कये वेदोमोस्ती' की कापी पढ़ डाली जाये, तो कैसा रहे?"

समाचारपत्र की कापी ढूंढ़ी गई, दोनों साहब इत्मीनान

---

*बाबुल की मीनार का निर्माण या बाबुल की भाषाओं की गड़बड़ी, यह बाइबल में पाई जानेवाली एक पौराणिक कथा है। इस कथा का सार यह है कि बाबुल की मीनार के निर्माता उसे इतनी ऊंची बनाना चाहते थे कि वह आकाश को छू सके। मगर भगवान ने मिनार को नष्ट किया और निर्माताओं को दण्ड देते हुए उनकी भाषा ऐसी गड़बड़ा दी कि वे एक दूसरे की बात समझने में असमर्थ हो गये और अलग-अलग दिशाओं में चले गये।

से छाया में जा बैठे और शुरू से आख़िर तक उसे पढ़ गये। उन्होंने मास्को, तूला, पेंज़ा और रियाज़ान की दावतों का पूरा विवरण पढ़ा, मगर इस बार उन्हें उबकाई नहीं आई!

*   *   *

बहुत दिन बीते या थोड़े, आख़िर को जनरल वहां रहते-रहते उदास हो गये। रह-रहकर उन्हें पीटर्सबर्ग में रह जानेवाली बावर्चिनों की याद सताने लगी। कभी-कभी तो वे छिप-छिपकर आंसू भी बहाने लगे।

"श्रीमान्, जाने इस वक़्त क्या हो रहा होगा पोद्याचेस्काया सड़क पर?" एक जनरल ने दूसरे से पूछा।

"उसकी चर्चा न कीजिये, श्रीमान्! दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है!" दूसरे जनरल ने जवाब दिया।

"वैसे तो यहां भी ख़ूब मज़ा है – ऐसा मज़ा कि बयान से बाहर! मगर फिर भी नर-भेड़ को मादा-भेड़ से अलग होकर चैन नहीं मिलता। और फिर वर्दी का भी तो कुछ कम ग़म नहीं!"

"ग़म-सा ग़म है वह! वर्दी भी चौथे दर्जे के अफ़सर की। उसकी तो सिलाई देखकर ही सिर चकराने लगता है!"

अब वे दोनों लगे देहाती पर इस बात के लिये ज़ोर डालने कि जैसे भी हो वह उन्हें पोद्याचेस्काया सड़क पर उनके

घर पहुंचा दे। और लीजिये! देहाती तो उनकी पोद्याचेस्काया सड़क भी जानता है। वह वहां जा चुका है, मूंछों को शराब-शहद से भिगो चुका है, मगर उनके मज़े से वंचित रहा है।

"हम पोद्याचेस्काया के ही तो जनरल हैं!" जनरलों ने ख़ुश होकर कहा।

"जहां तक मेरा सम्बन्ध है हुज़ूर, तो आपने घर के बाहर रस्से के सहारे लटककर दीवार या छत रंगनेवाले और मक्खी की तरह नज़र आनेवाले किसी आदमी को देखा होगा? मैं वही हूं सरकार!" देहाती ने बताया।

अब देहाती दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डालकर यह सोचने लगा कि कैसे उन जनरलों को ख़ुश करे, जो उस निकम्मे से, इतनी मेहरबानी से पेश आये थे और जिन्होंने उस देहाती के काम पर नाक-भौं नहीं सिकोड़ी थी। सोच-सोचकर उसने यह किया कि एक जहाज़ बना डाला। जहाज़ तो ख़ैर उसके बनाये क्या बन पाता, पर एक ऐसी नाव ज़रूर बना डाली कि सागर-समुद्र के पार पोद्याचेस्काया सड़क पर सही-सलामत पहुंचा जा सके।

"देख रे बदमाश, कहीं हमें डुबो मत देना!" उस नाममात्र के जहाज़ को लहरों पर डोलते हुए देखकर जनरलों ने उसे डांटा।

"तसल्ली रखिये हुज़ूर! कोई पहली बार थोड़े ही है," उसने जवाब दिया और सफ़र की तैयारी कर ली।

देहाती ने हंसों के नर्म-नर्म पंख इकट्ठे करके उन्हें नाव की तली में बिछाया और जनरलों को इस नर्म विस्तर पर लिटा दिया। फिर उसने सलीब बनाई, भगवान का नाम लिया और नाव बढ़ा दी। रास्ते में जब तूफ़ान आते, तेज़ हवायें चलतीं, तो जनरलों की जान निकलती और वे देहाती को उसके आलस, उसकी कामचोरी के लिये ऐसी जली-कटी सुनाते कि न क़लम्म लिख सके और न ज़बान बयान कर सके। मगर देहाती था कि नाव बढ़ाता गया, बढ़ाता गया और जनरलों को नमकीन मछलियां खिलाता गया।

आख़िर नेवा-मैया नज़र आई, उसके आगे दिखाई दी प्रसिद्ध सम्राज्ञी येकातेरीना की नहर और फिर वहीं तो था बड़ा पोद्याचेस्काया! तो पहुंच गये वे सकुशल अपने घर! बावर्चिनें तो हक्की-बक्की रह गईं। कैसे मोटे-ताज़े हो गये हैं उनके साहब, कैसा निखार है चेहरे पर, कैसे रंग में, कैसे मज़े में नज़र आ रहे हैं वे! जनरलों ने कॉफ़ी पी, पावरोटियां खाईं और वर्दियां चढ़ा लीं। वर्दियां डांटकर वे पहुंचे सरकारी ख़ज़ाने में, वहां जो पेंशन की रक़म मिली, तो इतनी अधिक कि न लिखी जाये, न बयान की जाये!

साहब लोगों ने देहाती को भुलाया नहीं। उसे वोद्का का जाम भरकर भेजा और चांदी के पांच कोपेक इनाम में दिये। जा, मज़े कर मियां देहाती!

चेख़ोव, अन्तोन पाव्लोविच (१८६०–१९०४)– १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग के सुविख्यात लघु-उपन्यास लेखक और नाटककार, अद्भुत कलाकार-नवीकारक, गागर में सागर समोने की कला के उस्ताद।

'साहित्य का अध्यापक' (१८९४) चेख़ोव की एक श्रेष्ठ रचना है।

अन्तोन चेख़ोव

साहित्य का अध्यापक

१

चोबी फ़र्श पर घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनाई दी। अस्तबल से सबसे पहले लाया गया मुश्की घोड़ा काउंट नूलिन, उसके बाद सफ़ेद वेलिकान और फिर लाई गई उसकी बहन, यानी माइका नाम की घोड़ी। बहुत ही बढ़िया और क़ीमती थे ये घोड़े। बुज़ुर्ग शेलेस्तोव ने वेलिकान पर ज़ीन कसा और फिर अपनी बेटी माशा को सम्बोधित करके कहा—

"हां तो मरीया गोडफ़्रुआ, आओ! हुम!"

माशा शेलेस्तोवा अपने परिवार में सबसे छोटी थी। उम्र उसकी अठारह बरस की हो चुकी थी, मगर घर के लोग

अभी तक उसे बच्ची ही समझने के आदी थे। इसी लिये वे उसे मान्या और मान्यूस्या के प्यार भरे नामों से बुलाते थे। मगर फिर क्या हुआ कि शहर में एक सरकस आया और माशा बड़े उत्साह से उसमें आई-गई। इसके बाद सभी उसे मरीया गोडफ़ुआ के नाम से बुलाने लगे।

"हुम!" माशा ने हुंकार-सी भरी और वेलिकान पर सवार हो गई।

माशा की बहन वार्या माइका घोड़ी पर बैठी और निकीतिन सवार हुआ काउंट नूलिन घोड़े पर। अफ़सर लोग अपने-अपने घोड़ों पर डट गये। घुड़सवारों का यह अच्छा-ख़ासा ख़ूबसूरत-सा जुलूस बन गया। अफ़सरों की सफ़ेद वर्दियां और लड़कियों की घुड़सवारी की काली पोशाकें इसकी रौनक़ बढ़ा रही थीं। घुड़सवारों का यह जुलस धीरे-धीरे बाहर आया।

इस बात की ओर निकीतिन का ख़ास ध्यान गया कि घोड़े पर बैठते समय और बाद में सड़क पर भी मान्यूस्या न जाने क्यों, सिर्फ़ उसी में दिलचस्पी ले रही थी। निकीतिन और उसके घोड़े काउंट नूलिन को चिन्ता की दृष्टि से देखते हुए उसने कहा–

"सेर्गेई वसीलिच, अपने घोड़े को दहाने से कसे रहियेगा। इसे बिदकने मत दीजियेगा। बहुत नाज़-नख़रे दिखाता है यह घोड़ा।"

या तो इसलिए कि वेलिकान घोड़े की काउंट नूलिन घोड़े से गहरी दोस्ती थी या फिर केवल संयोगवश ही, आज तीसरा

दिन था कि मान्यूस्या निकीतिन की ही बग़ल में अपना घोड़ा लगाये थी। मान्यूस्या सवार थी शानदार सफ़ेद घोड़े पर– नाटी, नाज़ुक-छरहरा बदन, सुन्दर नाक-नक़्शा। वह ऊंचा रेशमी टोप पहने थी, जो उसपर जंच नहीं रहा था और जिसके कारण वह अपनी उम्र से बड़ी लग रही थी। निकीतिन उसे देख रहा था ख़ुश होता हुआ, उसी में डूबता हुआ, रोम-रोम में पुलक और उमंग अनुभव करता हुआ। वह उसकी बातें सुन रहा था बहुत कम समझता हुआ, मन ही मन सोचता हुआ–

"क़सम भगवान की! आज नहीं शर्माऊंगा। कहकर ही दम लूंगा आज उससे दिल की बात..."

शाम के कोई सात बज रहे थे। यह वह वक़्त था जब सफ़ेद बबूल और बकाइन के फूल इतने तेज़ महकते हैं कि हवा और ख़ुद यह वृक्ष भी अपनी गन्ध पर मुग्ध हुए-से लगते हैं। नगरपालिका के बग़ीचे में बैंड बज रहा था। घोड़ों की टापें सड़क पर गूंज रही थीं। सभी ओर से क़हक़हे, बातचीत और फाटकों के बन्द किये जाने की आवाज़ें सुनाई पड़ रही थीं। रास्ते में मिलनेवाले फ़ौजी रंगरूट अफ़सरों को सलामी देते और स्कूल के विद्यार्थी निकीतिन को नमस्कार कहते। घूमने-फिरनेवाले सभी लोग बाग़ में बजते हुए बैंड की तरफ़ जल्दी से क़दम बढ़ा रहे थे। इन लोगों को घुड़सवारों का यह छोटा-सा जुलूस स्पष्टतः बहुत अच्छा लगा। मौसम बड़ा सुहाना

था, आकाश में इधर-उधर बिखरे हुए बादल बहुत ही प्यारे, बहुत ही नर्म-नर्म दिखाई दे रहे थे। पोपलार और बबूल के वृक्षों की परछाइयां बहुत ही सिमटी हुई और बहुत ही प्यारी थीं। ये परछाइयां जब फैलती हैं, तो चौड़ी सड़कों को लांघकर दूसरी ओर के मकानों के छज्जों और दूसरी मंज़िलों तक को अपनी लपेट में ले लेती हैं।

घुड़सवारों का यह दल नगर से बाहर आ पहुंचा और बड़ी सड़क पर उन्होंने घोड़ों को दुलकी पर डाल दिया। यहां न तो बबूल के और न बकाइन के फूलों की ही ख़ुशबू थी। बैंड बाजे की गूंज भी नहीं थी। इसकी जगह खेतों की गन्ध थी। रई और गेहूं के छोटे-छोटे पौधे लहरा रहे थे, गोफ़र चीं-चीं कर रहे थे, कौवे कांय-कांय कर रहे थे। जिधर भी नज़र जाती थी, वहीं हरियाली छाई थी। हां, सिर्फ़ ख़रबूज़ों के खेत कुछ-कुछ काली झलक दे रहे थे और बाईं ओर दूरी पर क़ब्रिस्तान के ऊपर सेब के पेड़ों के मुरझाये हुए सफ़ेद फूल नज़र आ रहे थे।

घुड़सवार पशुवधशाला और फिर बीयर बनाने के कारख़ाने के क़रीब से गुज़रे। आगे फ़ौजी बैंड बाजे वाले जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाते हुए नगर से बाहर के बाग़ की ओर जा रहे थे। घुड़सवारों ने उनको पीछे छोड़ा।

"इस बात के बारे में दो मत नहीं हो सकते कि पोल्यान्स्की का घोड़ा बहुत अच्छा है," वार्या के साथ-साथ जाते अफ़सर

की ओर आंख से इशारा करते हुए मान्यूस्या ने निकीतिन से कहा। "पर उसमें दोष ज़रूर है। पहली बात तो यह कि उसकी बाईं टांग वाला सफ़ेद पदम बिल्कुल अच्छा नहीं लगता और दूसरे वह गर्दन उचकाता है। उसकी यह आदत अब किसी तरह भी बदली नहीं जा सकती। मरते दम तक वह इसी तरह गर्दन उचकाता रहेगा।"

मान्यूस्या को अपने बाप की तरह ही घोड़ों का जनून था। किसी के पास वह बढ़िया घोड़ा देख लेती, तो उसके सीने पर सांप लोट जाता। हां, अगर दूसरों के घोड़ों में कोई दोष ढूंढ़ लेती, तो फूली न समाती। निकीतिन घोड़ों के मामले में एकदम कोरा था। घोड़े का दहाना कसे रखना है या लगाम, उसे दुलकी चलाना है या सरपट दौड़ाना है, उसके लिये इसमें कतई कोई अन्तर नहीं था। वह यह ज़रूर महसूस कर रहा था कि जिस ढंग से वह घोड़े पर आसन जमाये बैठा था, वह ढंग स्वाभाविक नहीं, तनावपूर्ण था। वह सोच रहा था कि वे अफ़सर जो ढंग से घोड़े के ज़ीन पर जमना जानते हैं, उसकी तुलना में मान्यूस्या की नज़रों में कहीं अधिक चढ़ेंगे। उसे अफ़सरों से ईर्ष्या हो रही थी।

घुड़सवार जब नगर से बाहर वाले बाग़ के क़रीब पहुंचे, तो किसी ने सुझाव दिया कि बाग़ में चलकर खारा पानी पिया जाये। बस, मोड़ दिये घोड़े उधर ही। बाग़ में सिर्फ़ शाहबलूत के वृक्ष थे। कुछ ही समय पहले उनमें पत्ते आने

"क्या बदतमीज़ी है यह!" निकीतिन ने सोचा। "यह भी मुझे दूध पीता बच्चा समझता है!"

जब कोई उसके कम उम्र होने की चर्चा करता, ख़ासकर नारियों और स्कूल के विद्यार्थियों की उपस्थिति में, तो उसे बुरा लगता। जब से वह इस नगर में आकर अध्यापक बना था, अपनी कम उम्री उसे फूटी आंखों नहीं भाती थी। विद्यार्थी उसका रोब नहीं मानते थे, बड़े-बूढ़े उसे छोकरा समझते थे और औरतें उसकी लम्बी-चौड़ी बातें सुनने के बजाय कहीं अधिक चाव से उसके साथ नाचती थीं। अगर अब किसी तरह उसकी दस बरस उम्र बढ़ सकती, तो वह उसके लिये कोई भी क़ीमत अदा कर देता।

बाग़ से आगे बढ़े शलेस्तोव के फ़ार्म की तरफ़। फ़ार्म के फाटक के पास जाकर रुक गये, फ़ार्म के कारिंदे की बीवी प्रास्कोव्या को बुलवा भेजा और उससे ताज़ा दूध लाने को कहा। दूध आया, तो कोई भी पीने को तैयार नहीं हुआ, एक-दूसरे का मुंह तकते हुए हंस दिये और फिर वहां से लौट चले। जब लौट रहे थे, तो नगर के बाहर वाले बाग़ में बैंड बज रहा था; सूरज क़ब्रिस्तान के पीछे जा छिपा था और आधे आकाश में डूबते सूरज की लाली छाई हुई थी।

मान्यूस्या फिर से निकीतिन के बराबर आ गई। निकीतिन मान्यूस्या से यह कहने को बेचैन था कि मैं आपको जी-जान से प्यार करता हूं। मगर उसे इस बात का डर हुआ कि कहीं

अफ़सर और वार्या न सुन लें। इसलिये वह चुप ही रह गया। मान्यूस्या भी चुपचाप थी। निकीतिन को इस बात का एहसास हुआ कि वह क्यों चुपचाप है, क्यों उसके बराबर अपना घोड़ा लगाये है। उसने अपने को बहुत ख़ुशक़िस्मत अनुभव किया। इस सुखद अनुभूति से धरती, आकाश, नगर की रोशनियां और बीयर के कारख़ाने की छायाकृति, सभी उसे बहुत सुन्दर, बहुत मनमोहक प्रतीत होने लगे। उसे लगा कि उसका घोड़ा काउंट नूलिन हवा में उड़ा जा रहा है और क्षितिज की लालिमा पर चढ़ जाना चाहता है।

वे घर लौट आये। बाग़ में मेज़ पर समोवार सूं-सूं कर रहा था। मेज़ के एक सिरे पर बुज़ुर्ग शेलेस्तोव अपने मिलने-जुलनेवाले अदालत के अफ़सरों के साथ मजलिस लगाये बैठे थे और सदा की भांति किसी चीज़ पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे।

"यह पाजीपन है!" उन्होंने कहा। "एकदम पाजीपन और इसके सिवा कुछ नहीं। हां, पाजीपन है!"

निकीतिन जब से मान्यूस्या के प्रेमपाश में बंधा था, उसे शेलेस्तोव परिवार की हर चीज़ प्यारी लगने लगी थी–घर, घर का बाग़ीचा, शाम की चाय, बेंत की कुर्सियां, बूढ़ी आया और यहां तक कि "पाजीपन" का शब्द भी, जो कि बुज़ुर्ग का तकिया-कलाम बना हुआ था। उसे नापसन्द थी तो कुत्तों और बिल्लियों की बड़ी संख्या और मिस्री नसल के कबूतर,

जो बरामदे के बड़े-से पिंजरे में दर्दीली आवाज़ में आहें भरते रहते थे। घर के बाहर और घर के अन्दर रहनेवाले कुत्तों की संख्या इतनी अधिक थी कि इस परिवार की इतने दिनों की जान-पहचान में वह केवल दो ही नाम याद कर पाया था – मूश्का और सोम। मूश्का छोटी और मरियल-सी कुतिया थी, जिसके मुंह पर लम्बे-लम्बे बाल थे, बड़ी ही गुस्सैल और लाड़-प्यार में बिगड़ी हुई। निकीतिन से तो उसे बहुत ही चिढ़ थी। जब भी निकीतिन को देखती, तभी एक तरफ़ को मुंह मोड़कर दांत पीसती और लगती गुर्राने...

फिर वह कुर्सी के नीचे जा दुबकती। जब वह उसे अपनी कुर्सी के नीचे से भगाने की कोशिश करता, तो वह ज़ोर से भौंक उठती। परिवार के लोग कहते –

"डरिये नहीं, वह काटती नहीं, बहुत भली है हमारी यह कुतिया।"

दूसरा कुत्ता यानी सोम काले रंग और ऊंचे क़द का था। टांगें उसकी लम्बी-लम्बी थीं और पूंछ थी डंडे के समान। जब खाना लगता या चाय पी जाती, तो यह मेज़ के नीचे आ पहुंचता, घूमता जाता और जूतों और मेज़ के पायों पर खटाखट अपनी दुम मारता जाता। यह अच्छे स्वभाव का और बुद्धू-सा कुत्ता था। मगर निकीतिन को वह फूटी आंखों न भाता, क्योंकि एक आदत थी इस कुत्ते की – खाना खानेवालों के पतलून पर अपनी थूथनी टिकाने और मुंह की

राल से उनके पतलून पर दाग़ लगाने की। निकीतिन ने खीझकर कई बार उसके चौड़े माथे पर चाकू का दस्ता मारा, थूथनी पर हाथ जमाया, दुतकारा और उसकी मिन्नत भी की, मगर हर कोशिश के बावजूद पतलून पर दाग़ लगता ही।

सैर-सपाटे से लौटने के बाद चाय, फलों के मुरब्बे, बिस्कुट और मक्खन बहुत ही मज़ेदार लगे। चाय का पहला प्याला तो सभी ने इस तरह मस्त होकर पिया कि किसी को बात करने का ख़्याल तक न आया। दूसरा दौर शुरू हुआ, तो बहस ने सिर उठाया। यह एक तरह से नियम ही बन गया था कि चाय और खाने की मेज़ पर बहस का श्रीगणेश वार्या से ही होता। वह तेईस वर्ष की हो चुकी थी। मान्यूस्या से शक्ल-सूरत में बढ़-चढ़कर थी। अपने परिवार में वह सबसे अधिक समझदार और पढ़ी-लिखी समझी जाती थी, धीर-गम्भीर बनी रहती थी। मां के परलोक सिधारने के बाद बड़ी बेटी होने के नाते, उसके लिये ऐसा करना ही उचित था। गृह-स्वामिनी के रूप में जब वह मेहमानों के सामने आती, तो ब्लाउज़ पहने हुए, इसी अधिकार से वह फ़ौजी अफ़सरों को उनके कुलनामों से सम्बोधित करती और मान्यूस्या को अपनी बेटी के समान मानती। वह उससे बड़ी उस्तानियों के से अन्दाज़ में बातचीत करती। अपने को वह 'कुंवारी बुढ़िया' कहती। मतलब यह कि उसे एक न एक दिन विवाह कर पाने का पूरा विश्वास था।

चर्चा किसी भी बात की क्यों न होती, बेशक मौसम की ही, मगर वार्या उसमें भी किसी न किसी तरह बहस ला घुसेड़ती। दूसरों की बात पकड़ने, बाल की खाल उतारने और वाक्यों को घुमा-फिराकर बहस शुरू करने की तो उसे जैसे सनक थी। जैसे ही आपने उससे कोई बातचीत शुरू की कि वह आपकी आंखों में आंखें डालकर आपको ध्यान से देखेगी और बात काटते हुए कहेगी – "मुझे यह निवेदन करने की अनुमति दीजिये, पेत्रोव साहब कि अभी दो दिन पहले ही आपने इसके बिल्कुल उलट अपना मत प्रकट किया था!"

या फिर वह अपने चेहरे पर व्यंग्यात्मक हंसी लाकर कहती – "हां तो आप हज़रत राजनीतिक पुलिस के उसूल का प्रचार कर रहे हैं। मैं बधाई देती हूं।"

अगर कोई दो मानी वाक्य कहता या श्लेष वाक्य का प्रयोग करता, तो उसी क्षण उसकी आवाज़ सुनाई देती – "घिसा पिटा है!" या "बात बनी नहीं!" अगर कोई अफ़सर किसी की टांग खींचने की कोशिश करता, तो वह बुरा-सा मुंह बनाकर कहती – "फ़ौजियाना हर-र-र-कत!"

वार्या कुछ ऐसे ढंग से र-र-र... कहती कि मूश्का फ़ौरन मेज़ के नीचे से जवाब देती... "र-र-र... हाऊं... हाऊं..."

तो ख़ैर, इस वक़्त चाय पीते हुए बहस यों शुरू हुई कि निकीतिन के मुंह से हाई स्कूल की परीक्षाओं के बारे में कोई बात निकल गई।

वार्या ने फ़ौरन उसे टोकते हुए कहा–

"सेर्गेई वसीलिच, मुझे अनुमति दीजिये अपनी बात कहने की। आपने फ़र्माया कि विद्यार्थियों को कठिनाई होती है। मगर बताइये तो कि इसके लिये ज़िम्मेदार कौन है? मिसाल के तौर पर आप ८ वें दर्जे के विद्यार्थियों को यह निबन्ध लिखने को देते हैं–'पुश्किन, एक मनोवैज्ञानिक के रूप में'। अब पहली बात तो यह है कि निबन्ध बहुत मुश्किल है और दूसरे यह कि पुश्किन को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में भला कौनसा कमाल हासिल था? श्चेद्रीन या दोस्तोयेव्स्की की चर्चा होती, तो बात दूसरी थी। पुश्किन एक महान कवि था और बस।"

"श्चेद्रीन अपनी जगह है, पुश्किन अपनी जगह," निकीतिन ने चिढ़कर कहा।

"मैं जानती हूं कि आपके हाई स्कूल में श्चेद्रीन को कोई मान्यता नहीं दी जाती, पर ख़ैर इससे मुझे वास्ता नहीं है। मुझे तो सिर्फ़ यह बताइये कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पुश्किन को कौनसा कमाल हासिल था?"

"तो आपकी यह राय है कि पुश्किन में मनोवैज्ञानिक गहराई नहीं थी? इजाज़त हो तो मैं आपके सामने कुछ उदाहरण पेश करूं।"

निकीतिन ने पुश्किन की 'ओनेगिन' और फिर 'बोरीस गोदुनोव' नामक रचनाओं के कई हिस्से सुनाये।

"मुझे तो कोई मनोविज्ञान दिखाई नहीं दिया इनमें," वार्या ने झटपट कहा। "मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेवाला लेखक वह होता है, जो मानवीय हृदय के उतार-चढ़ाव की चर्चा करे। ये बढ़िया कवितायें हैं, बस और कुछ भी नहीं।"

"जानता हूं मैं कि आप क्या मतलब समझती हैं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का!" निकीतिन ने बिगड़ते हुए कहा। "कोई कुन्द छुरी से मेरी उंगली काटे और मैं गला फाड़कर चीखूं-चिल्लाऊं – यह है आपके अनुसार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।"

"बात बनी नहीं! ख़ैर, पुश्किन कैसे मनोविज्ञान का पंडित था यह आप नहीं बता पाये।"

निकीतिन को जब संकीर्णता और रूढ़िवादिता प्रतीत होनेवाली स्थिति सामना करना पड़ता, तो वह अपने सिर को हाथों में थामकर हाय-वाय करता एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ना शुरू कर देता। इस वक़्त भी ऐसा ही हुआ। वह झटके के साथ उठा, उसने अपना सिर थामा और आहें भरते हुए मेज़ के गिर्द चक्कर लगाया। फिर वह थोड़ा हटकर बैठ गया।

अफ़सरों ने निकीतिन की बात का समर्थन किया। जूनियर कप्तान पोल्यान्स्की ने वार्या को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि पुश्किन सचमुच ही मनोविज्ञान का पंडित था। अपनी बात की पुष्टि के लिये उसने जो कवितायें सुनाईं,

वे थीं कवि लेर्मोन्तोव की। लेफ़्टीनेन्ट गेरनेत ने कहा कि अगर पुश्किन को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में कमाल हासिल न होता, तो मास्को में उसका स्मारक ही क्यों बनाया जाता।

"यह पाजीपन है!" मेज़ के दूसरे सिरे से आवाज़ सुनाई दी। "मैंने तो गवर्नर से भी यही कहा था—'जनाब, यह पाजीपन है!'"

"मुझे अब और बहस नहीं करनी!" निकीतिन चिल्लाया। "इस सिलसिले का तो कभी अन्त नहीं होगा! बस! चल, दफ़ा हो यहां से कम्बख़्त कुत्ते!" निकीतिन सोम कुत्ते पर बरस पड़ा, जिसने अपना सिर उसके घुटने पर रख दी थी।

"र-र-र... हाऊं... हाऊं," कुर्सी के नीचे से सुनाई पड़ा।

"तो मान लीजिये कि आप ग़लत कह रहे हैं!" वार्या चिल्लाई। "मान जाइये!"

ठीक इसी वक़्त कुछ मेहमान लड़कियां आ गईं। बहस अपने आप ही ठप्प हो गई। सब लोग हॉल में जा पहुंचे। वार्या बड़े प्यानो पर जा बैठी और नाच की धुन बजाने लगी। पहले वाल्ज़ का दौर चला, फिर लोग पोल्का नाच नाचे और उसके बाद क्वाड्रिल। क्वाड्रिल नाच में बड़ा चक्कर लगता है और जूनियर कप्तान पोल्यान्स्की ने सभी कमरों का चक्कर लगा डाला। इसके बाद फिर वाल्ज़ नाच शुरू हुआ।

जब तक नाच चलता रहा, बुज़ुर्ग लोग हॉल में बैठे हुए

धुआं उड़ाते और युवा लोगों को नाचते हुए देखते रहे। इन्हीं बुज़ुर्ग लोगों में शेबाल्दीन नाम का एक व्यक्ति भी था। वह नगर की ऋण-संस्था का संचालक था। वह साहित्य प्रेम और मंच कला के अनुराग के लिये विख्यात था। उसी ने स्थानीय 'संगीत-नाटक मंडल' की नींव रखी थी और वह ख़ुद नाटकों में हिस्सा भी लेता था। मगर न जाने क्यों वह हमेशः किसी मसख़रे नौकर की भूमिका ही अदा करता। वह कविता सुनाता तो वह भी हमेशा एक ही, 'गुनहगार औरत'। शहर में उसे 'ममी' के नाम से पुकारा जाता। वह सचमुच लगता भी वैसा ही था – लम्बा क़द, सीख-सिलाई-सा दुबला-पतला, मज़बूत पट्ठोंवाले, चेहरे पर एक शान-सी बरसती हुई और ठहरी-ठहरी-सी उदास आंखें। नाटक कला का तो वह ऐसा दीवाना था कि बस कुछ न पूछिये। इसी दीवानगी में उसने अपनी दाढ़ी और मूंछें भी साफ़ करवा डालीं। नतीजा यह हुआ कि और अधिक ममी नज़र आने लगा।

बड़े चक्कर का नाच ख़त्म होने पर शेबाल्दीन हिचकता-झिझकता और लोगों से बचता-बचाता निकीतिन के क़रीब आया। उसने ज़रा खांसकर गला साफ़ किया और कहा –

"बहस के समय मुझे भी चाय की मेज़ पर उपस्थित रहने का सौभाग्य प्राप्त था। मैं पूरी तरह आपसे सहमत हूं। हमारे समान विचार हैं और आपसे बातचीत करके मुझे बहुत ख़ुशी

होगी। आपने लेस्सिंग की किताब 'हैमबर्ग की नाटक कला' तो ज़रूर पढ़ी होगी?"

"नहीं, मैंने नहीं पढ़ी।"

शेबाल्दीन को जैसे धक्का-सा लगा। इस तरह हाथ झटके उसने मानो उंगलियां जल गई हों। मुंह से कुछ नहीं कहा और निकीतिन से दूर हट गया। शेबाल्दीन की सूरत-शक्ल, उसका सवाल और आश्चर्यचकित होना–निकीतिन को यह सब हास्यास्पद लगा। मगर फिर भी उसने सोचा–

"देखा जाये तो बात उसकी जायज़ है। मैं साहित्य का अध्यापक हूं और अभी तक मैंने लेस्सिंग की किताब नहीं पढ़ी। पढ़नी ही होगी।"

रात के खाने के पहले बूढ़े-जवान सभी 'लकी' (क़िस्मत) खेल खेलने बैठ गये। ताश की दो गड्डियां ली गईं। एक गड्डी तो सभी में बराबर बांट दी गई और दूसरी गड्डी उल्टी करके रख दी गई।

"जिस किसी के हाथ में यह पत्ता है," बुज़ुर्ग शेलेस्तोव ने दूसरी गड्डी में से ऊपर का पत्ता उठाकर ज़ोर से कहा, "उसकी क़िस्मत में यह है कि वह अभी बच्चों के कमरे में जाये और आया को चूमे।"

शेबाल्दीन को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। सब ने उसे घेर लिया, उसे बच्चों के कमरे में ले गये, ख़ूब क़हक़हे लगाकर और तालियां बजाकर उससे आया को प्यार करवाया। ख़ूब ग़ुल-गपाड़ा हुआ, शोर मचा...

"इतने ज़ोर से नहीं!" शेलेस्तोव चिल्लाये। उनकी आंखों में ख़ुशी के आंसू छलछला रहे थे। "इतने ज़ोर से नहीं!"

निकीतिन की क़िस्मत में यह निकला कि लोगों से उनके पाप मनवाये। वह हॉल के बीचोंबीच कुर्सी पर बैठ गया। शॉल से उसका मुंह-सिर ढंक दिया गया। सबसे पहले इस पादरी के सामने वार्या आई।

"मैं जानता हूं आपके पाप," अन्धेरे में उसकी गम्भीर आकृति देखकर निकीतिन ने कहना शुरू किया। "बताइये तो देवी जी, किस कारण आप हर दिन पोल्यान्स्की के साथ घूमती-फिरती हैं? ज़रूर दाल में कुछ काला है!"

"बात नहीं बनी," वार्या इतना कहकर चली गई।

इसके बाद शॉल के नीचे से दो बड़ी-बड़ी और स्थिर-सी आंखें झलकीं। अन्धेरे में मनमोहिनी-सी सूरत दिखाई दी और एक अर्से से जानी-पहचानी और प्यारी गन्ध आई। निकीतिन को मान्यूस्या के कमरे की याद हो आई।

"मरीया गोडफ़्रुआ," निकीतिन ने कहा। वह ख़ुद ही अपनी आवाज़ नहीं पहचान पाया। ऐसी कोमल, ऐसी स्नेहमयी हो उठी थी उसकी आवाज़। "कौनसा पाप किया है आपने?"

मान्यूस्या ने आंखें मीचीं और ज़रा-सी ज़बान दिखा दी। फिर वह हंसकर वहां से चल दी। घड़ी भर बाद वह हॉल के बीच खड़ी थी और तालियां बजाती हुई चिल्ला रही थी—

"चलिये खाने की मेज़ पर, खाने की मेज़ पर!" सब लोग खाने के कमरे में पहुंच गये।

खाने के समय वार्या फिर बहस में उलझ गई और इस बार अपने पिता से। पोल्यान्स्की ने ख़ूब डटकर खाना खाया, लाल शराब पी और निकीतिन को यह बात सुनाई कि कैसे एक बार मोर्चे पर वह जाड़े के दिनों में रात भर दलदल में खड़ा रहा था। दुश्मन क़रीब था और इसलिये न बातचीत की जा सकती थी और न तम्बाकूनोशी ही। रात थी बहुत ठंडी, अन्धेरी और तन को काटनेवाली हवा चल रही थी। निकीतिन यह सुनता रहा और कनखियों से मान्यूस्या को देखता रहा। मान्यूस्या भी उसे एकटक देख रही थी, पलक झपकाये बिना। वह या तो किसी गहरी सोच में डूबी थी या फिर खो गई थी... निकीतिन को मान्यूस्या का ऐसा करना भला भी लगा और परेशानी भी हुई।

"वह क्यों मुझे ऐसे देख रही है? यह नादानी है। अगर कोई देख ले तो!" निकीतिन परेशान हो उठा। "ओह, वह अभी कितनी जवान है, कैसी भोली है!"

आधी रात के वक़्त मेहमान अपने-अपने घर चले। निकीतिन जब फाटक से बाहर निकला, तो मकान की दूसरी मंज़िल की खिड़की ज़ोर से खुली और मान्यूस्या बाहर झांकी।

"सेर्गेई वसीलिच!" उसने आवाज़ दी।

"जी, कहिये।"

"देखिये बात यह है..." मान्यूस्या ने कहना शुरू किया। ज़ाहिर था कि वह कुछ सोच रही थी। "बात यह है... कि पोल्यान्स्की ने दो-एक दिनों में अपना कैमरा लेकर आने का वादा किया है। वह हम सबका चित्र खींचेगा। हम सबको इकट्ठे होना होगा।"

"अच्छी बात है।"

मान्यूस्या आंखों से ओझल हो गई, खिड़की बन्द हुई। उसी घड़ी पियानो पर किसी की उंगलियां नाच उठीं।

"इसे कहते हैं घर!" सड़क पर जाते हुए निकीतिन ने सोचा। "यह घर है जिसमें सिर्फ़ मिस्री कबूतर ही आहें भरते हैं और वह भी इसलिये कि वे अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करने का कोई दूसरा ढंग नहीं जानते!"

मगर सिर्फ़ शेलेस्तोव परिवार में ही सुख-चैन की बंसी बजती हो, ऐसी बात नहीं थी। निकीतिन दो सौ क़दम भी आगे नहीं गया था कि उसे एक दूसरे घर से भी पियानो की स्वर-लहरियां गूंजती सुनाई दीं। वह थोड़ा और आगे गया तो फाटक पर एक देहाती को "बालालाइका" बजाते सुना। बाग़ में आरकेस्ट्रा ख़ूब ज़ोर-शोर से रूसी गीतों की धुनें हवा में लहरा रहा था...

निकीतिन, शेलेस्तोव परिवार के घर से कोई आध कोस की दूरी पर रहता था। उसके फ़्लैट में आठ कमरे थे। यह फ़्लैट उसने अपने एक सहयोगी अध्यापक के साथ मिलकर

किराये पर ले रखा था। इस अध्यापक का नाम था इप्पोलीत इप्पोलीतिच। वह भूगोल और इतिहास पढ़ाता था। उम्र उसकी बहुत नहीं थी। लाल दाढ़ी, उठी हुई नाक और खुरदरा-सा चेहरा, बुद्धिजीवियों जैसा नहीं, कारीगरों जैसा, मगर ख़ुशमिज़ाजी की छाप लिये हुए। निकीतिन जब घर लौटा, तो उसका यह सहयोगी मेज़ पर बैठा विद्यार्थियों के नक़्शे ठीक कर रहा था। वह भूगोल में नक़्शा-नवीसी और इतिहास में सही तिथियों की जानकारी को ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानता था। वह रात-रात भर बैठकर नीली पैंसिल से विद्यार्थियों के नक़्शे ठीक करता या इतिहास की तिथि-तालिकायें बनाता।

"कैसा शानदार मौसम है आज!" निकीतिन ने उसके कमरे में दाख़िल होते हुए कहा। "मगर आप पर मुझे आश्चर्य होता है। जाने कैसे आप ऐसे मौसम में कमरे में बैठे हैं।"

इप्पोलीत इप्पोलीतिच चुप्पा आदमी था। वह या तो मौन साधे रहता या फिर जानी-मानी बातें कहता। इस वक़्त उसने जवाब में यह कहा—

"बेशक बहुत शानदार मौसम है। अब मई का महीना है, जल्द असली गर्मी के दिन शुरू हो जायेंगे। गर्मी तो गर्मी है, जाड़ा थोड़े ही है। जाड़े में तन्दूर गर्माना पड़ता है और गर्मी में इसके बिना ही मज़ा रहता है। गर्मी में रात को खिड़की खोलकर सोते हैं, फिर भी सुहाना मौसम होता है

ग्रौर जाड़े में दोहरी खिड़कियां होने पर भी ठण्ड लगती है।"

निकीतिन उसकी मेज़ के क़रीब घड़ी भर ही बैठा कि उसे ऊब अनुभव होने लगी।

"अच्छा, शुभ रात्रि!" निकीतिन ने उठते और जम्हाई लेते हुए कहा। "मैं तो अपने से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ रोमानी बातें करना चाहता था आपसे, मगर आपको अपने इस भूगोल से ही फ़ुर्सत नहीं! आपसे अगर प्रेम-मुहब्बत की बात की जाये, तो आप बीच में ही पूछेंगे – 'काल्का की लड़ाई किस साल में हुई थी?' जहन्नुम में जायें आपकी ये जंगें और चुकोत्का के अन्तरीप!"

"नाराज़ क्यों होते हैं?"

"अफ़सोस होता है!"

निकीतिन को इस बात की भी खीझ आ रही थी कि वह अभी तक मान्यूस्या से दिल की बात नहीं कह पाया था और किसी अन्य के सामने भी दिल खोलकर नहीं रख सका था। इसी तरह चिढ़ता-कुढ़ता वह अपने पढ़ाई के कमरे में पहुंचा और सोफ़े पर जाकर लेट गया। कमरे में अन्धेरा था, ख़ामोशी थी। लेटे-लेटे और अन्धेरे को देखते हुए निकीतिन न जाने क्यों यह सोचने लगा – दो-तीन वर्षों के बाद मैं किसी कारणवश पीटर्सबर्ग जाऊंगा, मान्यूस्या मुझे स्टेशन पर छोड़ने आयेगी और उसकी आंखों में आंसू छलक आयेंगे।

पीटर्सबर्ग में मुझे मान्यूस्या का लम्बा-चौड़ा पत्र मिलेगा, जिसमें वह मिन्नत-समाजत करते हुए मुझे जल्दी से घर लौटने को कहेगी। तब मैं उसे पत्र का उत्तर दूंगा... अपना पत्र मैं इस तरह से शुरू करूंगा—"मेरी प्यारी चुहिया..."

"हां, बिल्कुल इसी तरह—मेरी प्यारी चुहिया," उसने ये शब्द दोहराये और उसे हंसी आ गई।

वह आराम से नहीं लेटा हुआ था। उसने सिर के नीचे बांहें रख लीं और बाईं टांग सोफ़े की टक पर टिका दी। अब आराम मिला उसे। खिड़की में से उजाला झांकने लगा और बाहर अहाते में ऊंघते हुए मुर्ग़ों ने बांग दी। निकीतिन अपने उसी ख़्याल को खींचता चला गया—कैसे मैं पीटर्सबर्ग से लौटूंगा, कैसे स्टेशन पर मान्यूस्या से मेरी भेंट होगी, वह ख़ुशी से चीख़ती हुई मेरी ओर दौड़ेगी और मेरे गले में बांहें डाल देगी। नहीं, शायद ऐसा करना और भी अच्छा होगा—मैं उसे चकमा दूंगा—चुपचाप रात को घर पहुंचूंगा, बावर्चिन दरवाज़ा खोलेगी, फिर मैं दबे पांव सोने के कमरे में जाऊंगा, खटका किये बिना कपड़े उतारूंगा और झट से बिस्तर में जा घुसूंगा। मान्यूस्या की आंख खुलेगी—ख़ुशी से उछल पड़ेगी!

वातावरण में उजाला ही उजाला हो गया था। अब न पढ़ाई का कमरा था न खिड़की। बीयर की जिस फ़ैक्टरी के सामने से आज वे सैर करते हुए गुज़रे थे, उसी के ओसारे में

मान्यूस्या बैठी थी। वह कुछ कह रही थी। फिर उसने निकीतिन की बांह में बांह डाली और नगर के बाहर वाले बाग़ में उसके साथ टहलने चल दी। बाग़ में उसने शाहबलूत के वृक्ष और टोप की शक्ल वाले कौओं के घोंसले देखे। एक घोंसला झूलने लगा, उसमें से शेबाल्दीन ने झांककर ऊंची आवाज़ में कहा – "आपने लेस्सिंग की किताब भी नहीं पढ़ी!"

निकीतिन सिर से पांव तक सिहर उठा और उसकी आंख खुल गई। सोफ़े के सामने इप्पोलीत इप्पोलीतिच खड़ा था और गर्दन पीछे की ओर किये हुए टाई बांध रहा था।

"उठिये साहब, स्कूल जाने का वक़्त हो गया," उसने कहा। "कपड़े पहने-पहने नहीं सोना चाहिये। इस तरह कपड़े ख़राब हो जाते हैं। बिस्तर में सोना चाहिये कपड़े उतारकर..."

अपनी आदत के अनुसार वह देर तक और शब्दों को खींच-खींचकर उन्हीं बातों की चर्चा करता रहा, जो एक ज़माने से सभी को मालूम हैं।

निकीतिन का पहला पाठ था रूसी भाषा का, दूसरी कक्षा में। जब वह ठीक नौ बजे इस कक्षा में पहुंचा, तो उसने काले तख़्ते पर मोटे-मोटे अक्षरों में खड़िया से लिखे हुए ये दो अक्षर देखे – म० श०। इनका शायद मतलब था – माशा शेलेस्तोवा।

"ओह शैतानों को अभी से गन्ध आ गई..." निकीतिन ने सोचा। "कहां से जाने इन्हें सब बातों की ख़बर हो जाती है?"

दूसरा पाठ था पांचवें दर्जे में, रूसी साहित्य का। वहां भी काले तख़्ते पर वही दो अक्षर लिखे थे – म० श०। पाठ समाप्त करके जब वह कमरे से बाहर निकला, तो ठीक उसी तरह जैसे कि थियेटर की गैलरी में होता है, पीछे से ज़ोर की आवाज़ सुनाई दी –

"हुर्रा! शेलेस्तोवा!"

निकीतिन रात को कपड़े पहने पहने ही सो गया था, इसलिये उसका सिर भारी था, सुस्ती से बदन टूट रहा था। विद्यार्थी परीक्षाओं से पहले की छुट्टियों की प्रतीक्षा में थे, कुछ करते-धरते नहीं थे, ऊब अनुभव कर रहे थे और ऊब के कारण शरारतें कर रहे थे। निकीतिन भी ऊबा हुआ था, उनकी शरारतों की ओर ध्यान न देकर बार-बार खिड़की के क़रीब जाता। खिड़की से उसे धूप में नहाई हुई सड़क नज़र आती। उसे नज़र आता मकानों के ऊपर निर्मल नीलाकाश, पक्षी और दूर, बहुत दूर, हरे-भरे बाग़ों और मकानों के पीछे नीली झलक लिये हुए वृक्षों के झुरमुट, सीमाहीन विस्तार और फर्राटे भरती हुई गाड़ी का धुआं...

सड़क पर बबूल वृक्षों की छाया में दो फ़ौजी अफ़सर सफ़ेद वर्दी पहने और हंटर घुमाते हुए जाते दिखाई दिये। घोड़ा-गाड़ी में यहूदियों की एक पूरी टोली गुज़री – सफ़ेद दाढ़ियां लहराते और टोपियां पहने हुए। फिर बच्चों की शिक्षिका डाय-रेक्टर की पोती के साथ घूमती दिखाई दी... सोम कुत्ता

अन्य दो कुत्तों के साथ भागता हुआ कहीं गया... और यह लीजिये – सादा-सा भूरा फ़्राक और लाल जुर्राब पहने और हाथ में 'यूरोप का सन्देशवाहक' पत्रिका लिये हुए वार्या वहां से गुज़री। अवश्य ही वह नगर के पुस्तकालय से आई होगी...

पाठों के समाप्त होने में अभी काफ़ी देर थी – तीन बजे तक उनका सिलसिला चलनेवाला था! स्कूल से छुट्टी पाकर भी वह न तो अपने और न शेलेस्तोव परिवार के घर जा सकता था। उसे जाना था वोल्फ़ के घर ट्यूशन पढ़ाने। वोल्फ़, लूथर का धर्म स्वीकार कर लेनेवाला एक धनी यहूदी था। उसे अपने बच्चों को हाई स्कूल में भेजना पसन्द नहीं था, वह हाई स्कूल के अध्यापकों को घर पर बुलाकर बच्चों को ट्यूशन दिलवाता था और हर पाठ के लिये पांच रूबल फ़ीस देता था...

"ऊब, सूनापन, सूनापन!"

तीन बजे वह वोल्फ़ के घर गया और जैसा कि उसे महसूस हुआ अनन्तकाल तक वहीं बैठा रहा। पांच बजे वह वहां से निकला और कोई सात बजे उसे फिर स्कूल पहुंचना था। वहां अध्यापक-समिति की सभा थी, जिसमें चौथी और छठी श्रेणियों की मौखिक परीक्षाओं के कार्यक्रम तय किये जाने थे।

रात हो चुकी थी जब वह हाई स्कूल से शेलेस्तोव परिवार की ओर चला। दिल उसका धड़क रहा था और चेहरा तम-तमाया हुआ था। महीना हुआ तब भी, हफ़्ता हुआ तब भी

वह इस बात की तैयारी करके घर से आया था कि बात साफ़ करके ही रहेगा। वह इसके लिये भूमिका से आरम्भ करके अन्त तक पूरा भाषण सोचकर घर से जाता रहा था। पर अब तो एक भी शब्द उसके पास तैयार न था और दिमाग़ में सब कुछ उल्टा-सीधा हुआ पड़ा था। वह सिर्फ़ इतना जानता था कि आज वह ज़रूर ही बात साफ़ कर डालेगा। अब और अधिक इन्तज़ार करना मुमकिन नहीं था।

"मैं उसे बग़ीचे में ले चलूंगा," उसने सोचा, "थोड़ी देर उसके साथ वहां टहलूंगा और बात साफ़ कर दूंगा..."

ड्योढ़ी में कोई भी नज़र नहीं आया, वह हॉल में और फिर दीवानख़ाने में गया... वहां भी कोई नहीं था। हां, उसे दूसरी मंज़िल से वार्या की आवाज़ सुनाई दी, जो किसी से बहस कर रही थी, और बच्चों के कमरे से उसे दर्ज़िन की कैंची की भनक मिली।

इस घर में एक छोटा-सा कमरा था, जिसके तीन नाम थे—छोटा कमरा, बीच का कमरा और अन्धा कमरा। उस कमरे में पुरानी और बड़ी-सी एक आलमारी थी, जिसमें दवाइयां, बारूद और शिकार की ज़रूरी चीज़ें रखी रहती थीं। यहां से दूसरी मंज़िल को लकड़ी की तंग-सी सीढ़ी जाती थी, जिसपर हमेशा बिल्लियां सोई रहती थीं। यहां दो दरवाज़े थे—एक बच्चों के कमरे की ओर और दूसरा दीवानख़ाने की तरफ़ खुलता था। निकीतिन जब यहां पहुंचा,

तो बच्चों के कमरे का दरवाज़ा खुला और इस ज़ोर से बन्द हुआ कि सीढ़ी और आलमारी बुरी तरह हिल उठीं। गहरे रंग की पोशाक पहने और हाथ में नीले कपड़े का एक टुकड़ा लिये हुए मान्यूस्या तेज़ी से बाहर निकली। निकीतिन पर उसकी नज़र नहीं पड़ी और वह सीढ़ी की ओर लपकी।

"ज़रा ठहरिये तो..." निकीतिन ने उसे आवाज़ देकर रोका। "नमस्ते, गोडफ़्रुआ... आप अगर अनुमति दें तो..."

शब्द उसके गले में ही अटककर रह गये। उसे सूझा नहीं कि क्या कहे। एक हाथ से उसने मान्यूस्या का हाथ थाम लिया और दूसरे से नीला कपड़ा। मान्यूस्या या तो डरी, या आश्चर्यचकित हुई और उसे बड़ी-बड़ी आंखों से तकती रही।

"अनुमति दीजिये..." इस डर से कि वह कहीं चली न जाये, निकीतिन ने अपनी बात जारी रखी। "मुझे आपसे कुछ कहना है... मगर... इसके लिये यह जगह ठीक नहीं है। मैं अब और बर्दाश्त नहीं कर सकता, मुझमें अब इसकी हिम्मत नहीं रही... आप समझती हैं न गोडफ़्रुआ, मैं अब और सहन नहीं कर सकता... बस इतना ही..."

नीला कपड़ा ज़मीन पर गिर गया और निकीतिन ने मान्यूस्या का दूसरा हाथ थाम लिया। मान्यूस्या के चेहरे पर सफ़ेदी आ गई, उसके होंठ कांपे, वह निकीतिन से थोड़ा पीछे को हटी और दीवार और आलमारी के बीच कोने में सिमटकर रह गई।

"सच कहता हूं, आप विश्वास करें..." उसने धीरे-से कहा। "मान्यूस्या, सच कहता हूं..."

मान्यूस्या ने गर्दन पीछे की ओर ढलका दी। निकीतिन ने उसके ओंठ चूम लिये। इसलिये कि यह चुम्बन लम्बा हो सके, उसने मान्यूस्या के गाल उंगलियों से थाम लिये। कुछ ऐसे हुआ कि वह ख़ुद भी आलमारी और दीवार के बीच कोने में जा पहुंचा। मान्यूस्या ने इसके गले में बांहें डाल दीं और सिर ठोड़ी के नीचे टिका दिया।

इसके बाद दोनों बग़ीचे में भाग गये।

शेलेस्तोव परिवार के घर का बग़ीचा काफ़ी बड़ा था, कोई सोलह बीघे का। वहां लाइम और मेपल के कोई बीस पुराने वृक्ष थे, एक फ़र का वृक्ष था और बाक़ी सब फलोंवाले पेड़ थे—चेरी, सेब, नाशपाती और ज़ैतून के... फूल भी ढेरों थे।

निकीतिन और मान्यूस्या चुपचाप वीथियों में भागते रहे, हंसते रहे, बीच-बीच में एक-दूसरे से ऐसे ऊटपटांग सवाल पूछते, जिनका वे ख़ुद ही जवाब भी न देते। ऊपर आकाश में चौदहवीं का चांद हंस रहा था। जहां गहरे रंग की घास उगी थी, वहां चांदनी कुछ मन्द पड़ी हुई थी। गुललाला और सोसन के पौधे मानो अलसाये-से, नींद में ऊंघते हुए खड़े थे। वे मानो गिड़गिड़ाकर कह रहे थे कि हमसे भी कुछ प्यार की बातें करो।

निकीतिन और मान्यूस्या जब घर लौटे, तो फ़ौजी अफ़सर और युवतियां वहां पहले से ही उपस्थित थीं और मजूर्का नाच का रंग जमा हुआ था। पोल्यान्स्की ने पहले की भांति फिर बड़े चक्कर वाले नाच में सब कमरों का चक्कर लगाया और नाच के बाद फिर 'लकी' खेल खेला गया। खाना खाने के पहले जब मेहमान हॉल से खाने के कमरे में गये, तो मान्यूस्या हॉल में निकीतिन के साथ अकेली रह गई। वह निकीतिन के गले लगी और उसने कहा–

"तुम ख़ुद ही पापा और वार्या से बात कर लेना। मुझे शर्म आती है..."

खाने के बाद उसने बुज़ुर्ग शेलेस्तोव से चर्चा चलाई। बड़े मियां ने सब कुछ सुना, सोचा-विचारा और कहा–

"आपने मुझे और मेरी बेटी को जो सम्मान प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपका आभारी हूं। किन्तु एक मित्र के रूप में आपसे कुछ कहने की अनुमति चाहता हूं। मैं बाप की हैसियत से नहीं, बल्कि उसी तरह आपसे बातचीत करूंगा जैसे एक भला आदमी किसी भले आदमी से करता है। आप कृपया मुझे यह बतायें कि आपको शादी करने की इतनी जल्दी क्या है? जल्दी शादी करने की प्रथा तो देहातियों में है और ज़ाहिर है कि यह पाजीपन है। पर आपको क्या पड़ी है ऐसा करने की? आप ऐसे नौजवान होते हुए क्यों अपने पैरों में जंजीर डालना चाहते हैं?"

"जैसा आप समझते हैं मैं कतई वैसा नौजवान नहीं हूं," निकीतिन को बुरा लगा। "२६ वर्ष की उम्र है मेरी!"

"पिता जी, घोड़ों का हकीम आ गया!" दूसरे कमरे से वार्या ने पुकारकर कहा।

बातचीत अधूरी रह गई। वार्या, मान्यूस्या और पोल्यान्स्की निकीतिन को घर पहुंचाने गये। जब वे उसके घर के फाटक पर पहुंचे, तो वार्या ने कहा—

"तुम्हारे ये रहस्यपूर्ण मीत्रोपोलीत मीत्रोपोलीतिच भी क्या आदमी हैं? कहीं आते-जाते ही नहीं? हमारे ही घर आ जाया करें।"

निकीतिन जब इस रहस्यपूर्ण इप्पोलीत इप्पोलीतिच के कमरे में पहुंचा, तो वह चारपाई पर बैठा पतलून उतार रहा था।

"बिस्तर में नहीं लेटना, प्यारे!" निकीतिन ने हांफते हुए कहा। "ज़रा रुकिये, नहीं लेटियेगा!"

इप्पोलीत इप्पोलीतिच ने झटपट पतलून चढ़ा लिया और घबराकर पूछा—

"क्या मामला है?"

"मैं शादी करनेवाला हूं।"

निकीतिन अपने साथी की बग़ल में बैठ गया। उसे आश्चर्यचकित होते देखकर उसने स्वयं भी मानो हैरान होते हुए कहा—

"यक़ीन मानिये! माशा शेलेस्तोवा से! मैंने आज बात भी चला दी है।"

"तो ख़ैर इसमें क्या है? लड़की अच्छी ही लगती है। सिर्फ़ इतना ही कि बहुत कम उम्र है।"

"हां, बहुत कम उम्र है!" निकीतिन ने गहरी सांस ली और चिन्ता प्रकट करते हुए कंधे झटके। "हां, बहुत, बहुत जवान है!"

"हाई स्कूल में वह मेरी छात्रा रही है। मैं उसे जानता हूं। भूगोल में होशियार और इतिहास में कमज़ोर थी। पाठ के समय ध्यान नहीं देती थी।"

निकीतिन को अचानक, न जाने क्यों, अपने इस साथी पर बड़ा तरस आया। उसका मन हुआ कि उससे कोई अच्छी सी बात कहे, कोई ऐसी बात, जिससे उसके मन को कुछ चैन मिले।

"प्यारे, यह बताइये, आप शादी क्यों नहीं कर लेते?" उसने पूछा। "इप्पोलीत इप्पोलीतिच, मिसाल के तौर पर, क्यों न वार्या से आपकी शादी हो जाये? क्या लड़की है वह! बहुत ही ग़ज़ब की! यह सही है कि बहस करने का उसे बड़ा शौक़ है, मगर दिल... क्या दिल पाया है उसने! अभी-अभी आपकी चर्चा की थी उसने। प्यारे, कर ही लें आप उससे शादी! क्यों?"

निकीतिन बहुत अच्छी तरह यह जानता था कि वार्या ऐसे नीरस और उठी हुई नाक वाले व्यक्ति से कभी शादी करने को राज़ी नहीं होगी। मगर फिर भी वह उसे ऐसा करने के लिये ज़ोर दे रहा था। भला क्यों?

"शादी, यह बहुत गम्भीर मामला है," इप्पोलीत इप्पोलीतिच ने सोचते हुए कहा। "सब कुछ अच्छी तरह सोच-विचार लेना चाहिये, ठोंक-बजाकर देख लेना चाहिये। योंही क़दम उठाना ठीक नहीं होता। समझ-बूझ से हमेशा काम लेना चाहिये और ख़ास तौर पर शादी-ब्याह के मामले में, जबकि आदमी कुंवारपन को छोड़कर नये जीवन का श्रीगणेश करता है।"

और उसने वही सब कुछ कहना शुरू किया, जो लोग बहुत पहले से जानते हैं। निकीतिन वह सब कुछ सुनने को तैयार नहीं था, उसने उससे इजाज़त ली और अपनी ओर चला गया। उसने झटपट कपड़े उतारे और जल्दी से बिस्तर में जा लेटा। वह चाहता था कि जितनी भी जल्दी हो सके अपने सौभाग्य, मान्यूस्या और अपने भविष्य के बारे में ताना-बाना बुनना शुरू कर दे। वह मुस्करा दिया। तभी उसे याद आया कि लेस्सिंग की किताब तो उसने अभी तक नहीं पढ़ी।

"पढ़नी चाहिये..." उसने सोचा। "पर आख़िर क्या लेना है मुझे उसे पढ़कर है? भाड़ में जाये!"

अपने सौभाग्य की उत्तेजना और ख़ुशी की थकान के कारण फ़ौरन ही उसकी आंख लग गई और भोर होते तक उसके होंठों पर मुस्कान खिली रही।

सपनों में उसने चोबी फ़र्श पर घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनी। उसने देखा कि अस्तबल से किस तरह पहले मुश्की

काउंट नूलिन, फिर सफ़ेद वेलिकान घोड़ा बाहर आया और फिर निकली उसकी बहन माइका...

२

"गिरजाघर में जगह की तंगी थी और बहुत शोर था। एक बार तो कोई चीख़ भी उठा। मेरा और मान्यूस्या का विवाह करानेवाले पादरी ने चश्मे में से भीड़ को ग़ौर से देखते हुए डांटकर कहा—

"'गिरजे में इधर-उधर न घूमिये, शोर नहीं कीजिये। चुपचाप खड़े रहकर प्रार्थना कीजिये। भगवान का कुछ डर होना चाहिये।'

"मेरे दो साथी मेरी ओर के, और जूनियर कप्तान पोल्यान्स्की और लेफ़्टीनेन्ट गेरनेत मान्या की तरफ़ के गवाह थे। भजन-मंडली ने ख़ूब समा बांधा। मोम-बत्तियों की चटक, जगमगाहट, सज-धज, अफ़सरों की उपस्थिति और हंसते-मुस्कराते हुए सन्तुष्ट चेहरों, मान्या के देवी तुल्य रूप, समूचे वातावरण और विवाह के समय की प्रार्थना ने मुझपर ऐसा प्रभाव डाला कि मेरी आंखों में ख़ुशी के आंसू छलछला आये, मेरी ख़ुशी का पारावार न रहा। मैंने सोचा—पिछले कुछ समय में कैसी बहार आई है मेरे जीवन में, कैसा कवित्वपूर्ण सौन्दर्य भर गया है मेरे जीवन में। अभी दो साल पहले तक

मैं एक विद्यार्थी था, नेग्लीन्नी मुहल्ले के सस्ते-से कमरे में रहता था, जेब ख़ाली रहती थी, कोई अपना सगा-सम्बन्धी नहीं था और ऐसे लगता था कि मेरा कोई भविष्य नहीं है। अब मैं प्रान्त के एक अच्छे नगर में हाई स्कूल का अध्यापक हूं, न कोई फ़िक्र है न कोई चिन्ता, प्यार की तरंगों में बहता हूं, मेरे नाज़-नख़रे बर्दाश्त किये जाते हैं। मुझे इस बात का ख़याल भी आया कि मेरे लिये ही यहां आज यह भीड़ जमा है, गिरजाघर के ये तीन झाड़-फ़ानूस जगमगा रहे हैं, बड़े पादरी अपना गला थका रहे हैं और भजनीक पूरा ज़ोर लगा रहे हैं। मेरी ख़ातिर ही यह जवान लड़की लावण्य, मस्ती और ख़ुशी में डूबी हुई है। अब कुछ ही समय बाद वह मेरी पत्नी कहलायेगी। मुझे पहली-पहली मुलाक़ातों की याद आई। कैसे हम नगर के बाहर घूमते थे, मैं प्यार की चर्चा किया करता था और मौसम भी पूरी गर्मी भर जान-बूझकर बहुत अच्छा रहा था। नेग्लीन्नी के कमरों में रहते वक़्त जो सुख-सौभाग्य मुझे केवल उपन्यासों-कहानियों में ही सम्भव प्रतीत होता था, अब मैं स्वयं उसका उपभोग कर रहा था, उसे अपने हाथों में समेटे हुए था।

"विवाह की रस्म समाप्त हो जाने पर सभी लोग मेरे और मान्या के गिर्द जमा हो गये। उन्होंने खुले दिल से अपनी ख़ुशी ज़ाहिर की, बधाई दी और मंगल-कामना की। लगभग सत्तर वर्ष की उम्र वाले बुज़ुर्ग ब्रिगेडियर जनरल ने केवल

मान्यूस्या को ही बधाई दी। अपनी ऊंची, तेज़ आवाज़ में उन्होंने इस ज़ोर से बधाई के शब्द कहे कि वे पूरे गिरजे में गूंज गये –

"'प्यारी मान्या, आशा करता हूं कि विवाह के बाद भी इसी तरह गुलाब की भांति खिली रहोगी।'

"अफ़सर, डायरेक्टर और सभी अध्यापक शिष्टाचार के नाते मुस्करा दिये। मैंने भी अपने चेहरे पर मधुर और बनावटी मुस्कान अनुभव की। बहुत ही प्यारा व्यक्ति और भूगोल तथा इतिहास का अध्यापक इप्पोलीत इप्पोलीतिच, हमेशा वही बात कहता था जो लोगों को पहले से मालूम हो। उसने बड़े प्यार से मेरा हाथ अपने हाथ में लिया और भावुक होकर कहा –

"'अभी तक आप कुंवारे थे और अकेले रहते थे। अब आपका विवाह हो गया है और दुकेले रहेंगे।'

"मुझे दहेज में बिना प्लस्तर का दो मंज़िला मकान मिला। गिरजाघर से हम इसी घर में पहुंचे। इस घर के अलावा मान्या के नाम कोई बीस हज़ार रूबल जमा थे और मेलीतोनोव्स्की नाम की कोई चरागाह भी थी। इसमें मकान भी बना हुआ था। वहां ढेरों मुर्ग़-बत्तखें भी थीं, जो देखभाल के बिना जंगली हुई जा रही थीं। गिरजे से लौटने पर मैं अंगड़ाइयां लेते हुए पढ़ने-लिखने के अपने नये कमरे में तुर्की सोफ़े पर जा लेटा। लेटा-लेटा मैं सिगरेट का धुआं उड़ाता

रहा। ऐसे आराम, सुख-चैन और सुविधा की अनुभूति मुझे पहले कभी नहीं हुई थी। इसी समय मेहमान हुर्रा-हुर्रा चिल्लाते रहे और ड्योढ़ी में सभी तरह के अटपटे और बेहूदा गाने चलते रहे। मान्या की बहन वार्या हाथ में गिलास लिये और भागती हुई मेरे कमरे में आई। एक अजीब, अनजाना-सा तनाव था उसके चेहरे पर। बिल्कुल ऐसे लगता था मानो पानी भरा हुआ हो उसके मुंह में। वह तो शायद आगे भाग जाना चाहती थी, मगर अचानक उसे ज़ोर की हंसी आ गई और फिर वह सिसकियां भरने लगी। गिलास छनछनाकर फ़र्श पर जा गिरा। हम उसकी बांह थामकर उसे वहां से ले गये।

"'कोई नहीं समझता!' सबसे आख़िरी कमरे में आया की चारपाई पर पड़ी हुई वह बाद में बड़बड़ाती रही। 'कोई नहीं समझता! हे मेरे भगवान, कोई भी तो नहीं समझता!'

"मगर सभी अच्छी तरह समझते थे कि वह अपनी बहन मान्या से चार साल बड़ी थी और अभी तक कुंवारी थी। वह ईर्ष्या के कारण नहीं, बल्कि इस दर्द की अनुभूति के कारण रोई थी, कि उसका वक़्त गुज़रा जा रहा था, कि शायद उसका वक़्त गुज़र भी चुका था। जब क्वाड्रिल नाच नाचा गया, तो वह आंसुओं से धुले चेहरे पर पाउडर की मोटी परत चढ़ाये हुए हॉल में आ चुकी थी। मैंने देखा कि जूनियर

कप्तान पोल्यान्स्की उसके सामने तश्तरी में आईसक्रीम लिये खड़ा था और वह चमच से खा रही थी...

"अब सुबह के पांच बज चुके हैं। मैंने अपनी डायरी उठाई है कि अपने रंगारंग और भरपूर सौभाग्य के बारे में लिख डालूं। सोचा है कि कोई छः पन्ने लिखूंगा और कल मान्या को पढ़कर सुनाऊंगा। मगर कुछ अजीब बात है कि मेरे दिमाग़ में सब कुछ उलझ-उलझकर रह गया है, सब कुछ एक सपने की भांति गड्ड-मड्ड हो गया है। सिर्फ़ वार्या वाली घटना ही मेरे दिमाग़ में साफ़ तौर पर बार-बार घूम रही है। मेरा मन होता है कि क़लम उठाऊं और लिखूं - बेचारी वार्या! मैं बैठकर बस यही लिखना चाहता हूं - बेचारी वार्या! वृक्ष सांय कर रहे हैं, बरसात की सूचना दे रहे हैं। कौवे कांय-कांय कर रहे हैं। मेरी मान्या की अभी-अभी आंख लगी है। न जाने क्यों उसका चेहरा उदास है।"

इसके बाद निकीतिन ने बहुत दिनों तक डायरी को हाथ नहीं लगाया। अगस्त के शुरू में ही असफल विद्यार्थियों की फिर से और प्रवेश-परीक्षायें शुरू हो गईं। धार्मिक पर्व के बाद फिर से पढ़ाई का सिलसिला चल पड़ा। सामान्यतः वह सुबह के आठ बजे स्कूल जाता और नौ बजते ही उसे मान्या और अपने नये घर की याद सताने लगती और वह बार-बार घड़ी पर नज़र डालता। छोटे दर्जों में वह किसी लड़के को इबारत लिखाने को कह देता और विद्यार्थी जब तक

इबारत लिखते, वह आंखें मूंदकर खिड़की की ओटक पर बैठा रहता और अपनी कल्पना की उड़ान भरता जाता। वह भविष्य के सपने देखता या अतीत की याद ताज़ा करता—परिणाम एक ही निकलता—बहुत ही कमाल के क़िस्से-कहानी के समान। ऊंचे दर्जों में गोगोल या पुश्किन के गद्य की पढ़ाई होती, तो वह ऊंघने लगता। वह सपनों में देखता लोग, वृक्ष, खेत और सवारी के घोड़े। वह गहरी सांस लेकर मानो लेखक की प्रशंसा करते हुए कहता—

"वाह क्या बात है!"

आधी छुट्टी के समय मान्या निकीतिन को स्कूल में नाश्ता भेज देती। नाश्ता बर्फ़ जैसे सफ़ेद कपड़े में लिपटा हुआ होता। निकीतिन उसे बहुत धीरे-धीरे, बड़े इत्मीनान से खाता ताकि उसका ज्यादा से ज्यादा मज़ा ले सके। इप्पोलीत इप्पोलीतिच आम तौर पर सिर्फ़ एक पावरोटी का ही नाश्ता करता। वह निकीतिन को आदर और ईर्ष्या की दृष्टि से देखता और लोगों को जो पहले से ही मालूम होती, कोई ऐसी ही बात कहता। मिसाल के तौर पर यह कि—

"खाये बिना लोग ज़िन्दा नहीं रह सकते।"

निकीतिन हाई स्कूल से फ़ुरसत पाकर ट्यूशन पढ़ाने चला जाता। आख़िर शाम को छः बजे जब वह घर लौटता, तो अपने मन में ऐसी ख़ुशी और ऐसी बेचैनी महसूस करता मानो पूरे साल भर घर से बाहर रहा हो। वह हांफता हुआ

सीढ़ियां चढ़ता, मान्या से मिलता, उसे बांहों में कसता, चूमता और क़समें खा-खाकर कहता कि उसे बेहद प्यार करता है, उसके बिना जी नहीं सकता, और विश्वास दिलाता कि उसके बिना बुरी तरह उदास हो जाता है। वह घबराकर पूछता कि उसका स्वास्थ्य कैसा है, उसका चेहरा क्यों मुरझाया हुआ है। फिर वे दोनों एक साथ खाना खाते। खाना खाने के बाद निकीतिन अपने पढ़ाई के कमरे में सोफ़े पर लेटकर सिगरेट का धुआं उड़ाता और वह पास बैठकर उससे धीरे-धीरे बातें करती।

निकीतिन के लिये अब सबसे अधिक ख़ुशी के दिन होते इतवार और समारोहों के वे दूसरे दिन, जब वह सुबह से शाम तक घर पर रहता। इन दिनों वह बहुत भोले-भाले मगर असाधारण रूप से सुखद जीवन में भाग लेता, जो उसके मन में सुन्दर दृश्यों से ओत-प्रोत चरवाहों के गीतों की याद ताज़ा करता। वह लगातार देखा करता कि उसकी समझ-बूझ रखनेवाली और सलीक़े की बीवी ने कितने सुन्दर ढंग से अपने नीड़ को सजाया है। यह दिखाने के लिये कि वह स्वयं भी घर में फ़ालतू व्यक्ति नहीं है, कोई योंही बेकार का काम ले बैठता। मसलन यह कि वह सायबान से बग्घी बाहर निकालता और उसका सभी ओर से निरीक्षण करता। मान्यूस्या ने तीन गायें रखकर, अच्छी ख़ासी डेयरी चला रखी थी। तहख़ाने में दूध से भरे बहुत-से घड़े और खट्टी मलाई से भरे

हुए मर्तबान रखे रहते। वह मक्खन निकालने के लिये ही यह सब सम्भालकर रखती। निकीतिन कभी-कभार मज़ाक़ करने के लिये उससे दूध का गिलास मांग लेता। वह घबरा जाती, क्योंकि यह अटपटी हरकत होती। मगर वह हंसकर उसे बाहुपाश में कस लेता और कहता –

"मैंने तो योंही मज़ाक़ किया था, मेरी रानी! यह तो सिर्फ़ मज़ाक़ था!"

या फिर निकीतिन उसकी कठोर नियमनिष्ठा की खिल्ली उड़ाता। मसलन जब मान्या पनीर या सासेज का सूखकर पत्थर जैसा बना हुआ टुकड़ा देखती, तो तुनककर कहती –

"यह रसोईघर में नौकरों-चाकरों के काम आता है।"

निकीतिन उससे कहता कि ऐसा छोटा-सा टुकड़ा केवल चूहेदानी में डालने के ही काम आ सकता है। तब मान्या ज़रा गर्म होकर यह प्रमाणित करने लगती कि मर्दों को घर-गिरस्ती के मामलों की रत्ती भर समझ नहीं होती और यह कि रसोईघर में अगर तीन मन नाश्ता भी पहुंच जाये, तो नौकरों को क़तई आश्चर्य नहीं होगा। वह सहमत हो जाता और उसे बांहों में भींच लेता। मान्या की बातों में जो कुछ उचित होता, निकीतिन को वह असाधारण और अद्भुत प्रतीत होता। जिस बात से वह सहमत न हो पाता, उसे मान्या का भोलापन मानता और इससे उसका दिल द्रवित हो उठता।

निकीतिन पर कभी-कभी दार्शनिकता की सनक सवार हो जाती। वह किसी काल्पनिक विषय पर अपनी टीका-टिप्पणी शुरू कर देता। मान्या उसकी बातें सुनती और आश्चर्य से उसका मुंह ताकती रहती।

"मैं बहुत ही ख़ुश हूं तुम्हारे साथ, मेरे दिल की ख़ुशी," मान्या की उंगलियों को हाथ में लेकर या फिर उसकी ज़ुल्फ़ों से खेलते हुए वह कहता। "अपनी इस ख़ुशक़िस्मती को मैं कोई ऐसी चीज़ नहीं मानता हूं, जो मुझे अकस्मात् ही मिल गई हो, मानो आसमान से उतर आई हो। मेरा यह सौभाग्य बिल्कुल स्वाभाविक है, न्याय-संगत है और तर्क की कसौटी पर खरा उतरता है। मैं मानता हूं कि इन्सान ख़ुद अपना भाग्यनिर्माता है और जो पेड़ मैंने स्वयं रोपा है, मैं अब उसी के फल खा रहा हूं। हां, मैं डींग हांके बिना यह कहना चाहता हूं कि इस सुख-सौभाग्य का सृजन स्वयं मैंने किया है और इसका उपभोग करने का मुझे पूरा अधिकार है। मेरे अतीत के बारे में तो तुम जानती ही हो। यतीमी, ग़रीबी, मुसीबतों का मारा हुआ बचपन, परेशानियों में उलझी हुई किशोरावस्था – संघर्षों-कठिनाइयों की इस राह पर चलकर मैं सुख-सौभाग्य की इस मंज़िल तक पहुंचा हूं..."

अक्तूबर के महीने में हाई स्कूल के लोगों को बहुत बड़ा सदमा सहना पड़ा। इप्पोलीत इप्पोलीतिच के दिमाग़ में सूजन हुई और वह चल बसा। मरने के दो दिन पहले उसपर बेहोशी

ने अपना आसन जमा लिया और वह उसी हालत में कुछ ऐसी बातें बड़बड़ाता रहा, जो सभी को पहले से मालूम होती हैं –

"वोल्गा नदी कास्पियन सागर में गिरती है... घोड़े जई और भूसा खाते हैं..."

जिस दिन इप्पोलीत इप्पोलीतिच को दफ़नाया गया, उस दिन हाई स्कूल में पढ़ाई नहीं हुई। उसके साथी और विद्यार्थी ताबूत और ढक्कन उठाये हुए चले और हाई स्कूल की सहगान-मण्डली क़ब्रिस्तान तक के पूरे रास्ते भर 'राम मान' गाती रही। जुलूस में तीन बड़े और दो छोटे पादरियों, लड़कों के हाई स्कूल के सभी विद्यार्थियों और समारोही पोशाक पहने ईसाई भजनीकों ने भाग लिया। इस मातमी जुलूस की धूमधाम देखकर राह चलते लोग अपने ऊपर सलीब का निशान बनाते और कहते –

"भगवान सभी को ऐसी मौत दे।"

निकीतिन क़ब्रिस्तान से लौटा तो मन बहुत उदास, बहुत खिन्न था। उसने मेज़ में से अपनी डायरी ढूंढ़कर निकाली और लिखा –

"इप्पोलीत इप्पोलीतिच को अभी-अभी क़ब्र में सुलाकर आये हैं।

"दीन-विनम्र इन्सान! तेरी आत्मा को शान्ति मिले। मान्या, वार्या और मातमी जुलूस में शामिल होनेवाली सभी

नारियां खुल कर रोईं। चूंकि उन्हें मालूम था कि इस नीरस, इस ठुकराये हुए व्यक्ति को कभी किसी औरत का प्यार नहीं मिला, वे शायद इसी लिये रोईं। मैं अपने साथी को श्रद्धांजली अर्पित करना चाहता था, मगर मुझे पहले से ही आगाह कर दिया गया कि स्कूल के डायरेक्टर का दिल दिवंगत के प्रति साफ़ नहीं था और इसलिये मेरा स्नेह-प्रदर्शन शायद उसे अच्छा न लगता। शादी के बाद आज यह पहला दिन है, जब मेरा मन बहुत भारी है..."

इसके बाद पढ़ाई का पूरा साल बीत गया और कोई ख़ास घटना नहीं घटी।

जाड़ा आया, मगर बहुत मरा-मरा-सा। पाला नहीं पड़ा और बर्फ़ ऐसी गिरती कि गिरते ही पिघल जाती। क्रिसमस से १२ वें दिन में हवा रात भर शरद के दिनों की भांति चीख़ती-चिल्लाती रही, छतों से बर्फ़ पिघलकर टपकती रही। सुबह जब पानी को पवित्र करने की रस्म का वक़्त हुआ, तो पुलिस ने लोगों को नदी पर जाने से रोक दिया। कारण यह बताया गया कि बर्फ़ पिघल रही है और गदली हो गयी है। बेशक मौसम बेहद ख़राब था, मगर इसके बावजूद निकीतिन के घर में गर्मियों के दिनों के समान सुख-चैन की बंसी बज रही थी। इतना ही नहीं। उसके मनोरंजनों में अब एक वृद्धि और हो गई थी—अब उसने 'ब्रिज' का खेल

तो उसमें भी अपमान की कोई ख़ास बात नहीं थी। मगर फिर भी मन उसका लुटा-लुटा-सा था। यहां तक कि घर जाने को भी उसका मन नहीं हो रहा था।

"छिः, क्या बकवास है!" सड़क की बत्ती के नज़दीक रुकते हुए वह अपने आप से कह उठा।

उसके दिमाग़ में यह बात आई कि उसे बारह रूबलों का इसी लिये ग़म नहीं है कि वे मुफ़्त के थे। अगर उसने ख़ून-पसीना एक करके पैसा कमाया होता, तो उसे एक-एक कौड़ी की क़ीमत मालूम होती और तब वह हार-जीत के मामले में ऐसी लापरवाही न बरतता। हां, उसका सारा सुख-वैभव उसे मुफ़्त ही हाथ लगा है, और वास्तव में उसके लिये वह उसी तरह बेकार और अनावश्यक है, जिस तरह स्वस्थ व्यक्ति के लिये दवाई। अगर अधिकांश लोगों की भांति उसे भी रोटी के एक-एक टुकड़े की चिन्ता में घुलना पड़ता, अगर काम करके उसकी पीठ और छाती की हड्डियां कसकने लगतीं, तो रात का खाना, गर्म और आरामदेह घर और पारिवारिक सुख-सौभाग्य – ज़िन्दगी की ज़रूरत, उसके श्रम का पुरस्कार और उसके जीवन का शृंगार बन जाता। मगर अब तो इन चीज़ों का अर्थ ही अजीब और अटपटा था।

"छिः, क्या बकवास है!" उसने दोहराया। वह अच्छी तरह समझता था कि इस तरह का तर्क-वितर्क स्वयं भी हिमाकत की निशानी है।

निकीतिन जब घर लौटा, तो मान्या सो रही थी। उसकी सांसों में इत्मीनान की झलक और होंठों पर मुस्कान थी। स्पष्टतः वह बहुत मज़े की नींद सो रही थी। उसके निकट ही सफ़ेद बिल्ला सिमट-सिमटाकर पोटली-सा बना पड़ा था और खरखरा रहा था। निकीतिन ने जब तक मोमबत्ती जलाकर उससे सिगरेट जलाई, मान्या जाग गई और उठकर एक ही सांस में पानी का पूरा गिलास गटागट पी गई।

"मुरब्बा खाया था मैंने," उसने कहा और मुस्करा दी। "तुम हमारे यहां गये थे क्या?" उसने पूछा।

"नहीं, मैं वहां नहीं गया।"

निकीतिन जान चुका था कि जूनियर कप्तान पोल्यान्स्की का किसी पश्चिमी प्रान्त में तबादला हो गया है। पिछले कुछ अर्से में वार्या को उससे बड़ी आशा बंध चली थी। मगर पोल्यान्स्की अब नगर में विदाई दावतें उड़ाता फिर रहा था। इसलिये उसकी सुसराल में आजकल बड़ी उदासी छाई हुई थी।

"शाम को वार्या आई थी," मान्या ने बैठते हुए कहा। "ज़बान से तो उसने कुछ नहीं कहा, मगर सूरत से बिल्कुल साफ़ था कि उस बेचारी के दिल पर बहुत बोझ है। फूटी आंखों नहीं सुहाता पोल्यान्स्की तो मुझे। मोटा और तोन्दल, जब चलता या नाचता है, तो गाल थलथल करते हैं... बिल्कुल अच्छा नहीं लगता मुझे। फिर भी मैं उसे ढंग का आदमी समझती थी।"

"मैं तो उसे अब भी ढंग का आदमी समझता हूं।"

"तो उसने वार्या से ऐसा बेहूदा बर्ताव क्यों किया?"

"बेहूदा कैसे?" निकीतिन ने पूछा। उसे उस सफ़ेद बिल्ले पर ग़ुस्सा आने लगा था, जिसने अंगड़ाई लेकर कमर सीधी की थी। "जहां तक मैं जानता हूं उसने न तो विवाह का प्रस्ताव रखा था और न किसी तरह का कोई वचन ही दिया था।"

"तो किसलिये वह हर दिन हमारे घर में घुसा रहता था? शादी करने का इरादा नहीं था, तो न आता।"

निकीतिन ने मोमबत्ती बुझा दी और लेट गया। मगर न तो सोने को और न लेटने को ही उसका मन हुआ। उसे लगा कि उसका सिर बहुत बड़ा है और एकदम ख़ाली है, खलियान की तरह। उसे अपने दिमाग़ में कोई नये और ख़ास क़िस्म के विचार लम्बी-लम्बी परछाइयों के रूप में चक्कर काटते-से महसूस हुए। वह सोच रहा था कि पारिवारिक सुख-सौभाग्य पर मन्द-मन्द मुस्कानेवाली लैम्प की रेशमी रोशनी के अला वा, और उस दुनिया के अलावा, जिसमें वह स्वयं और यह सफ़ेद बिल्ला आराम और इत्मीनान की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं, कोई एक दूसरी दुनिया भी है... उसे अचानक और बहुत बेचैनी के साथ उस दुनिया की चाह हुई। उसे बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि वह कहीं किसी कारख़ाने में या किसी बड़े वर्कशॉप में जाकर काम करे, किसी शिक्षा-संस्था

में जाकर अपने विचार व्यक्त करे, कुछ रचे, उसे प्रकाशित करवाये, ख़ूब खुलकर अपनी बात कहे, थके-टूटे, दुख और मुसीबतें झेले। वह कुछ ऐसा करना चाहता था, जिसमें पूरी तरह डूब जाये, अपनी सुधबुध भूल जाये, अपने व्यक्तिगत सुख-चैन की ओर से जिसकी अनुभूतियां सर्वथा एकरंगी होती हैं, बिल्कुल उदासीन हो जाये। उसकी कल्पना में सफ़ाचट चेहरे वाले शेबाल्दीन का अचानक चित्र उभरा, कुछ ऐसे कि मानो वह जीता-जागता उसके सामने खड़ा हो। उसने भर्त्सना करते हुए निकीतिन से कहा –

"आपने लेस्सिंग की किताब भी नहीं पढ़ी! कितने पिछड़ गये हैं आप! उफ़, आप तो बिल्कुल कोरे होकर रह गये हैं!"

मान्या फिर पानी पीने उठी। उसकी गर्दन, उसके गदराये कंधों और वक्ष के उभारों पर निकीतिन की नज़र पड़ी और उसे ब्रिगेडियर जनरल द्वारा गिरजे में कहा हुआ यह शब्द याद हो आया – गुलाब।

"गुलाब," वह बुदबुदाया और हंस दिया।

उसकी हंसी के जवाब में पलंग के नीचे सोई हुई मूश्का कुतिया गुर्रायी –

"र-र-र... हाऊं... हाऊं..."

बहुत ही ज़ोर का ग़ुस्सा आया, ठंडे हथौड़े-सा कुछ हिलता-डुलता अनुभव हुआ उसे अपने मन में। उसने चाहा कि मान्या

को कोई कड़वी, कोई चुभती बात कहे। इतना ही नहीं, उछलकर जाये और उसे एक हाथ जमा दे। उसका दिल ज़ोर से धड़कने लगा।

"इसका मतलब यह हुआ," उसने अपने को वश में करते हुए कहा, "कि अगर मैं आप लोगों के घर जाता था, तो मुझे तुमसे अवश्य ही शादी करनी चाहिये थी?"

"बेशक। तुम ख़ुद अच्छी तरह यह बात समझते हो।"

"बहुत ख़ूब।"

घड़ी भर बाद उसने फिर दोहराया—

"बहुत ख़ूब।"

यह सोचकर कि मुंह से कहीं कोई और बात न निकल जाये और यह कि मन को शान्ति मिल सके, निकीतिन अपने पढ़ाई के कमरे में जाकर तकियों के बिना ही सोफ़े पर लेट गया। बाद में वह सोफ़े से नीचे उतरकर क़ालीन पर लेट गया।

"क्या बकवास है!" उसने अपने को शान्त करते हुए कहा। "तू अध्यापक है, कैसा भला, कैसा बढ़िया है तेरा पेशा... कौनसी और दुनिया चाहिये तुझे? क्या हिमाकत है यह!"

मगर उसी क्षण उसने पूरे विश्वास के साथ अपने से कहा— अध्यापक तो ख़ैर मैं हूं नहीं, कर्मचारी हूं। मैं यूनानी भाषा पढ़ानेवाले चेक अध्यापक के समान हूं, बिल्कुल वैसा ही बुद्धू

और अनाड़ी, उसी तरह बिना किसी हैसियत के। अध्यापक वाली कोई बात कभी मुझमें नहीं थी। अध्यापन की कला से कभी मेरा वास्ता नहीं था, कभी मुझे उसमें दिलचस्पी नहीं थी। विद्यार्थियों से ढंग का बर्ताव तक करना मैं जानता नहीं हूं। जो कुछ पढ़ाता रहा हूं, ख़ुद मुझे उसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। शायद वह कुछ पढ़ाता रहा हूं, जो अनावश्यक है। दिवंगत इप्पोलीत इप्पोलीतिच तो खुले तौर पर मन्द बुद्धि का व्यक्ति था। उसके सभी साथी और विद्यार्थी यह जानते थे कि वह कितनी योग्यता का मालिक है और उससे क्या आशा की जा सकती है। मगर मैं तो बिल्कुल उस चेक अध्यापक जैसा हूं, जो अपनी मन्द बुद्धि पर पर्दा डालना जानता है और बड़ी होशियारी से सभी की आंखों में धूल झोंक सकता है। मैंने ऐसा नक़ाब ओढ़ रखा है मानो मैं सब कुछ जानता हूं, सब समझता हूं। इन नये विचारों ने निकीतिन को डरा दिया। उसने इन्हें दिमाग़ से निकाल फेंकने की कोशिश की, उन्हें बेवक़ूफ़ी का नाम दिया और यह कहकर अपने मन को तसल्ली दी कि यह सब परेशानी का नतीजा है, कि बाद में उसे ख़ुद अपने पर हंसी आयेगी।

सचमुच हुआ भी ऐसा ही। अगली सुबह उसे ख़ुद अपने पर हंसी आई और उसने अपने को बेवक़ूफ़ औरत की संज्ञा दी। मगर यह बात अब उसके सामने बिल्कुल साफ़ हो चुकी थी कि वह अपने मन का चैन खो बैठा है, शायद हमेशा

के लिये, कि इस बिना प्लस्तर के दो मंजिले मकान में अब उसे कभी ख़ुशी नसीब नहीं होगी। वह इस नतीजे पर पहुंच चुका था कि वह एक छलना के फेर में था, जिसका जादू टूट चुका है और एक नये, बेचैनी और चेतना के जीवन का श्रीगणेश हो चुका है, जो चैन और व्यक्तिगत सुख-सौभाग्य के जीवन से बिल्कुल मेल नहीं खाता।

अगले दिन इतवार था। वह हाई स्कूल के गिरजे में गया। वहां डायरेक्टर और सहयोगी अध्यापकों से भेंट हुई। उसे लगा कि मानो सभी लोग अपनी अज्ञानता और जीवन की परेशानियों को जैसे-तैसे छिपाने की कोशिश में ही जुटे हुए हैं। वह स्वयं भी इसी ख़्याल से कि अन्य लोग उसकी बेचैनी न भांप जायें, बड़े मधुर ढंग से मुस्कराता और इधर-उधर की बातें कहता रहा। इसके बाद वह स्टेशन पर चला गया। वहां उसने देखा कि कैसे डाक गाड़ी आई और गई। उसे यह अच्छा लग रहा था कि वह अकेला था कि उसके साथ और कोई नहीं था, जिससे बातचीत करना ज़रूरी हो।

घर लौटा, तो उसने अपने ससुर और वार्या को वहां पाया। वे दोपहर के खाने पर आये थे। वार्या की आंखें बता रही थीं कि रोकर आई है। उसने सिर-दर्द की शिकायत की। शेलेस्तोव ने ख़ूब डटकर खाना खाया और बार-बार यह कहते रहे कि आजकल के नौजवान बिल्कुल विश्वास करने

योग्य नहीं रहे, कि उनमें नाम मात्र को भलमनसाहत बाक़ी नहीं रही। उन्होंने कहा –

"यह पाजीपन है! मैं उसके मुंह पर साफ़-साफ़ कह दूंगा – यह पाजीपन!"

निकोतिन मधुर ढंग से मुस्कराता और मेहमानों की मेहमाननेबाज़ी में मान्या का हाथ बंटाता रहा। मगर जब दोपहर का खाना ख़त्म गया, तो वह अपने पढ़ाई के कमरे में चला गया और उसने अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मार्च महीने का सूरज ख़ूब चमक रहा था। खिड़की के शीशे में से गर्म-गर्म किरणें छनकर मेज़ पर पड़ रही थीं। सिर्फ़ बीस तारीख़ हुई थी, मगर अभी से पहियोंवाली गाड़ियों का इस्तेमाल होने लगा था। बाग़ में मैनायें शोर मचा रही थीं। कुछ ऐसा वातावरण था कि मान्यूस्या इस क्षण कमरे में आयेगी, गले में एक बांह डालकर कहेगी कि सवारी के घोड़े या घोड़ा-गाड़ी तैयार है और पूछेगी कि उसे सर्दी न लग जाये, इसलिये उसे क्या पहनना चाहिये। इस वर्ष भी पिछले साल जैसा ही वसन्त आया था, निखरा हुआ और बहुत सुन्दर। पिछले साल की सी ख़ुशियों की उससे आशा थी... मगर निकोतिन यह सोच रहा था कि स्कूल से लम्बी छुट्टी ले ले और मास्को जाकर नेग्लीन्नी मुहल्ले के जाने-पहचाने कमरे में रहे। साथ के कमरे में कॉफ़ी की चुसकियां ली जा रही थीं, जूनियर कप्तान पोल्यान्स्की की चर्चा हो

रही थी। निकीतिन भरसक कोशिश कर रहा था कि उनकी ओर से कान बन्द कर ले। उसने अपनी डायरी में लिखा—

"कहां भटककर रह गया हूं मैं, मेरे भगवान?! मेरे चारों ओर घटियापन ही घटियापन है। नीरस और ओछे लोग हैं, खट्टी मलाई से भरे हुए मर्तबान और दूध से भरे घड़े हैं, तिलचट्टे और मूर्ख नारियां हैं... घटियापन से बढ़कर भयानक और अपमानजनक और कुछ नहीं हो सकता। भाग जाना चाहिये यहां से मुझे, आज ही भाग जाना चाहिये! वरना मैं पागल हो जाऊंगा!"

कोरोलेन्को, व्लादीमिर गलाक्तिश्रोनोविच (१८५३–१९२१)–रूसी लेखक, प्रकाशक और सामाजिक कार्यकर्त्ता। 'जंगल गूंज रहा है' (१८८६) यह कहानी १९ वीं शताब्दी के अन्त के रूसी साहित्य की विशिष्टताओं को बहुत अच्छी तरह व्यक्त करती है। यह कहानी रूस में क्रान्तिपूर्व के वातावरण का चित्र प्रस्तुत करती है।

व्लादीमिर कोरोलेन्को

'जंगल गूंज रहा है'

आपबीती यह किसी की
जो कहानी बन गई!

१

जंगल गूंज रहा था...

सदा ही शोर मचा रहता था इस जंगल में—एक ही सुर में बंधा हुआ, दूरी पर बजनेवाली घंटियों की गूंज की तरह लहराता हुआ। यह शोर अस्पष्ट-सा था, मन को शान्ति देता था, दूर से सुनाई पड़नेवाली निःशब्द मधुर धुन की भांति, अतीत की उलझी-उलझाई स्मृतियों की तरह। हमेशा ही शोर रहता था इस जंगल में, क्योंकि यह बहुत पुराना, घना और

सपनों में ऊंघता हुआ सा था। किसी ठेकेदार के आरे और कुल्हाड़ी ने इसे छुआ तक नहीं था। सौ-सौ वर्ष पुराने ऊंचे सनोबर के वृक्ष फ़ौजी जवानों की तरह मुंह फुलाये खड़े थे। बहुत बड़े-बड़े और लाल-लाल तने थे उनके। उनकी हरी-भरी चोटियां आपस में गुंथी हुई थीं। नीचे गहरा सन्नाटा था, राल की गन्ध थी। सनोबर के सुई जैसे पत्तों की ज़मीन पर जमी हुई मोटी परतों के बीच से, जहां-तहां चमकती हुई झाड़ियां अपने सिर बाहर निकाले हुए थीं। ये झाड़ियां इन परतों की फूली-फूली और अत्यधिक आकर्षक झालर-सी मालूम होती थीं। ये एकदम निश्चल थीं, एक पत्ता तक नहीं हिल रहा था इनका। जंगल के नम हिस्सों में ऊंची-ऊंची हरी घास दूर तक खड़ी थी। तिपतिया घास के सफ़ेद फूल सिर भारी होने के कारण झुके जा रहे थे मानो चुपचाप अपनी थकान मिटा रहे हों। नीचे था ऐसा सन्नाटा और ऊपर थी जंगल की अविराम सांय-सांय। पुराना वन मानो गहरी सांसें ले रहा था।

जंगल की ये सांसें इस वक़्त और अधिक गहरी और ज़ोरदार हो गई थीं। मैं इस वन की एक पगडंडी पर चला जा रहा था। यह सही है कि मुझे आकाश दिखाई नहीं दे रहा था, मगर वन के तेवर देखकर मैंने यह महसूस किया था कि ऊपर धीरे-धीरे बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। वक़्त काफ़ी हो चुका था। वृक्षों के तनों के बीच से कहीं-कहीं कोई किरण

झलक दिखा रही थी। मगर वन के घने हिस्सों पर शाम का झुटपुटा छाता जा रहा था। नज़र आ रहा था कि रात होते तक तूफ़ान आयेगा।

आज के लिये शिकार का ख़्याल दिमाग़ से निकालना ज़रूरी हो गया था। तूफ़ान आने के पहले रात बिताने के ठिकाने पर पहुंचना लाज़िमी था। ज़मीन से बाहर निकली हुई जड़ों पर मेरे घोड़े के सुम बज रहे थे और वह खरखरा रहा था। आवाज़ की गूंज जब जंगल में ज़ोर से प्रतिध्वनित होती थी, तो वह कनौतियां बदलता था। वन-रक्षक की जानी-पहचानी जगह की ओर वह ख़ुद ही तेज़ी से क़दम बढ़ा रहा था।

कुत्ता भूंका। वृक्षों के तनों के बीच से लिपी-पुती दीवारें झलक दिखाने लगीं। ऊपर छाई हुई हरियाली के नीचे धुएं की नीली रेखा बल खा रही थी। लाल तनों की दीवार के नीचे एक तरफ़ को झुकी हुई झोंपड़ी थी, जिसकी छत भी जीर्ण-शीर्ण थी। ऐसा लगता था कि सुघड़ और तने हुए सनोबरों के ऊंचे-ऊंचे सिर जब इस झोंपड़ी के ऊपर झूमते हैं, तो यह और अधिक ज़मीन में धंस जाती है। जंगल के खुले मैदान के बीचोंबीच शाहबलूत के कम उम्र वृक्षों के झुंड आपस में गुंथे हुए खड़े थे।

शिकार के वक़्त के मेरे साथी वन-रक्षक ज़ख़ार और मक्सिम यहीं रहते थे। स्पष्ट था कि इस समय उन दोनों में

से कोई घर पर नहीं था, क्योंकि एलसेशन कुत्ते के ज़ोर से भूंकने पर भी कोई घर से बाहर नहीं निकला था। सिर्फ़ एक बूढ़ा बाबा झोंपड़ी की दीवार से सटकर बैठा हुआ था—चांद निकली हुई, सफ़ेद मूंछें जो सीने तक पहुंच रही थीं। वह छाल के जूते गांठ रहा था। वह धुंधली नज़र से ऐसे देख रहा था मानो कुछ याद करने की कोशिश कर रहा हो जो उसे याद नहीं आ रहा था।

"नमस्कार बाबा! घर पर है कोई?"

"एं!" उसने सिर हिलाया। "न तो ज़ख़ार है और न मक्सिम। रही मोत्र्या तो वह गाय के पीछे जंगल में गई है—गाय कहीं वन में खो गई है। बहुत मुमकिन है भालू... गाय को भालू खा गये हों... हां तो इस तरह कोई नहीं है घर पर!"

"ख़ैर कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे पास बैठकर इन्तज़ार करता हूं उनका।"

"कर लो इन्तज़ार, बैठ जाओ यहां," बूढ़े बाबा ने उत्तर दिया। मैं जब बलूत की टहनी से अपना घोड़ा बांध रहा था, तो वह अपनी कमज़ोर और धुंधलाई हुई नज़र से मुझे देखता रहा। बेचारा बूढ़ा—आंखों से दिखाई नहीं देता, हाथ कांपते हैं।

मैं जब उसके क़रीब ही बैठ गया, तो बूढ़े ने पूछा—

"कौन हो भाई तुम?"

जब-जब भी मैं यहां आता था, बूढ़ा बाबा मुझसे हर बार यही सवाल पूछता था।

"अरे तुम हो... समझा," बूढ़े ने जवाब दिया और फिर जूते गांठने के काम में जुट गया। "अक्ल बुढ़ा गई है। दिमाग़ बिल्कुल छलनी हो गया है, कुछ भी नहीं ठहरता इसमें। जो कभी के मर-खप गये, वे याद हैं मुझे, बहुत अच्छी तरह से याद हैं! मगर नये लोगों को, सभी नये लोगों को भूल जाता हूं... बहुत अधिक दिन जी लिया इस धरती पर।"

"बाबा, बहुत अर्से से डेरा है क्या इसी जंगल में?"

"हां ऐसा ही समझो भाई! फ़्रांसीसी जब आये थे ज़ार के राज में, तब भी मैं धरती पर था।"

"तब तो बहुत कुछ देखा-जाना है तुमने, बाबा। शायद बहुत कुछ जानते हो।"

बूढ़े बाबा ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा।

"क्या देखना-वेखना था मुझे, भाई? बस जंगल देखा... शोर मचाया करता है जंगल, दिन को, तो रात को, जाड़े में, तो गर्मी में... मैं तो ख़ुद मानो एक पेड़ हूं, यहीं जंगल में उम्र गुज़र गई, न कुछ देखा, न भाला... क़ब्र में पांव लटकाये बैठा हूं। कभी-कभी सोचता हूं–सो भी अक़्ल काम नहीं करती–समझ नहीं पाता कि दुनिया में जिया भी कि नहीं... हां तो यह बात है! शायद बिल्कुल जिया ही नहीं..."

जंगल के खुले मैदान में खड़े हुए वृक्षों के झुण्डों की घनी चोटियों के पीछे से काली घटा का छोर दिखाई दिया। जंगल के इस खुले भाग को घेरनेवाले सनोबरों की टहनियों ने हवा के झोंकों के इशारों पर झूलना शुरू कर दिया था। जंगल में बहुत शोर मच गया। बूढ़े ने सिर उठाया और इस शोर की तरफ़ कान लगा दिया।

"तूफ़ान आ रहा है," उसने घड़ी भर बाद कहा, "मैं यह निश्चित रूप से जानता हूं। ओह, रात को ज़ोर का अंधड़ चलेगा, सनोबरों की शामत आयेगी, जड़ समेत उखाड़कर फेंक देगा वह उन्हें! .. अपने रंग दिखायेगा जंगल का मालिक..." उसने धीरे-से कहा।

"तुम्हें कैसे मालूम है, बाबा?"

"ए, यह मुझे मालूम है! मैं अच्छी तरह जानता हूं कि पेड़ क्या कहता है... प्यारे, पेड़ भी डरता है... इसे देखो इस एस्प के वृक्ष को... मनहूस वृक्ष है यह... चौबीसों घण्टे कुछ न कुछ बोलता रहता है अपनी बोली में। हवा नहीं है, मगर उसे तो अपने कांपने से मतलब। इन सनोबर को ले लो – साफ़ दिन होता है, धूप होती है, तो यह ख़ूब मस्त रहता है। ज़रा हवा चलने लगती है, तो यह लगता है गूंजने और कराहने। यह तो ख़ैर कुछ नहीं... तुम अब ज़रा ध्यान से सुनो। आंखों से तो बेशक मुझे बहुत कम दिखाई देता है, पर कानों से तो सुनता हूं – शाहबलूत शोर

मचा रहा है न, छेड़ रहा है उसे कोई जंगली मैदान में...
यह निशानी है तूफ़ान की।"

उसकी बात सही थी। मैंने कम ऊंचे और इधर-उधर फैले हुए बलूतों के उस झुण्ड की तरफ़ देखा, जो जंगल के मैदान के बीचोंबीच खड़ा था और जिसके गिर्द ऊंचे सनोबर वृक्षों की दीवार-सी बनी हुई थी। बलूत वृक्षों का यह झुण्ड हवा के ज़ोरदार झोंकों में झूल रहा था और उससे जो कठोर अघोष ध्वनि पैदा हो रही थी, वह सनोबरों के गूंजते शोर से बिल्कुल भिन्न थी।

"क्यों? सुना तुमने?" बूढ़े ने कहा। उसके होंठों पर बाल-सुलभ शरारत थी। "मैं ख़ूब जानता हूं – छेड़ा है किसी ने बलूत को! मतलब यह है कि मालिक रात को आयेगा, तोड़ा-मरोड़ी करेगा... हां, मगर नहीं, टूटेगा नहीं वह! वह शाहबलूत है – बड़ा जानदार वृक्ष है, मालिक की भी चलने नहीं देता... यह है क़िस्सा प्यारे!"

"यह मालिक कौन है, बाबा? तुम ख़ुद ही तो कहते हो कि तूफ़ान पेड़ों को तोड़ता-मरोड़ता है।"

बूढ़े बाबा ने सिर हिलाया। उसके चेहरे पर शरारत झलक रही थी।

"सभी कुछ तो जानता हूं मैं! .. कहते हैं कि ऐसी हो गई है दुनिया कि किसी चीज़ में कोई विश्वास, कोई आस्था ही नहीं रही। तो यह है मामला! मगर मैंने तो देखा है

उसे अपनी इन आंखों से, जैसे कि अब तुम्हें देख रहा हूं। अरे नहीं, इससे भी कहीं अच्छी तरह से, क्योंकि अब तो बुढ़ा गई हैं मेरी आंखें और तब जवानी की आंखें थीं। ओह, क्या रोशनी, कैसी ज्योति थी उन दिनों मेरी आंखों में! .."

"कैसे देख लिया तुमने उसे, बाबा? कुछ सुनाओ तो।"

"सब कुछ ऐसे ही था जैसे कि इस समय। पहले सनोबर वन में कराहता है... गूंजता नहीं, कराहता है–हाय... ओह! थोड़ा दम लेता है, फिर चीख़ता-चिल्लाता है, फिर चीख़ता है, जल्दी-जल्दी... हां, बहुत रोता-तड़पता है। जानते हो क्यों? क्योंकि रात को मालिक इसकी कसकर पिटाई करते हैं। फिर बलूत बोलना शुरू करता है। शाम होते-होते उसका ज़ोर बढ़ता है और रात होते ही उसका चक्कर शुरू हो जाता है–ठहाके लगाता है और हंसता है, उछल-कूद करता है, जी भरकर अपना रंग दिखाता है और बार-बार बलूत पर ही टूट-टूटकर पड़ता है, उसे ही उखाड़ फेंकने की फ़िक्र में रहता है... एक बार क्या हुआ कि पतझड़ के दिन थे–मैंने खिड़की से झांका, मालिक को मेरी यह हरकत अच्छी नहीं लगी–सनोबर का तना उठाकर दे मारा खिड़की पर। बुरा हो उसका, चेहरे की खाल उड़ती-उड़ती बची। मैं भी कोई कच्ची गोलियां थोड़े ही खेला हूं, साफ़ बचकर निकल गया। हां प्यारे, समझ लो, कैसा क्रोधी है वह! .."

"सूरत-शक्ल कैसी है उसकी?"

"सूरत-शक्ल की क्या पूछते हो, दलदल में उगनेवाले बेद वृक्ष जैसी है सूरत उसकी। बेहद मिलती-जुलती!.. बाल ऐसे जैसे सूखी हुई अमरबेल जो पेड़ों पर छा जाती है। दाढ़ी भी ऐसी ही! रही नाक, तो जैसे मोटा-ताज़ा तना हो। थोबड़ा एकदम खुरदरा, काई से लथ-पथ। छिः कैसी भोंड़ी सूरत है उसकी! भगवान न करे कि कभी किसी की सूरत उससे मिलती-जुलती हो... भगवान की क़सम! दूसरी बार फिर मुझे इसके दर्शन हुए दलदल में, बिल्कुल वैसा ही था! बहुत निकट से देखा मैंने इसे... अगर मन हो, तो जाड़े में आ जाना, ख़ुद अपनी आंखों से देख लेना उसे। वहां चले जाना उस पहाड़ पर—वहां जहां जंगल ही जंगल है, वहां सबसे ऊंचे पेड़ पर चढ़ जाना—उसकी चोटी पर। वहां से किसी न किसी दिन नज़र आ जायेगा वह तुम्हें: जंगल के ऊपर-ऊपर से सफ़ेद खम्भे की तरह जाता है वह, अपने आप ही कभी इधर तो कभी उधर घूमता-फिरता है और फिर पहाड़ से नीचे ही नीचे उतरता चला जाता है। भागता जाता है, भागता जाता है नीचे की ओर जंगल में और फिर ओझल हो जाता है आंखों से। ओह!.. जिधर से गुज़रता है, उधर ही सफ़ेद बर्फ़ के निशान छोड़ता जाता है... क्या नहीं विश्वास होता बूढ़े की बातों पर? कभी न कभी ख़ुद देख लेना अपनी आंखों से।"

बढ़े के मन में जो कुछ आता था, अपनी लहर में कहे चला जा रहा था। लगता था कि जंगल की हलचल और बेचैनी और हवा में तूफ़ान की झलक ने बूढ़े रक्त में गर्मी ला दी थी। बूढ़ा बाबा सिर हिलाता था, हंसता था और अपनी धुंधलाई तथा ज्योतिहीन आंखों को मिचमिचाता था।

पर अचानक उसके ऊंचे माथे पर एक छाया-सी पड़ी। उसके माथे पर झुर्रियों की हल-रेखाएं-सी बनी हुई थीं। कोहनी से मुझे टहोककर उसने रहस्यमय ढंग से कहा –

"जानते हो प्यारे मैं तुमसे क्या कहनेवाला हूं? .. बेशक है वह वन का स्वामी – बड़ा ही दुष्ट है, यह भी सच है। धर्म-ईमान में विश्वास रखनेवाले आदमी के लिये तो उसकी भोंड़ी सूरत देखना भी पाप है... मगर फिर भी उसके बारे में सच्ची बात तो कहनी ही चाहिये – वह बुरा किसी का नहीं करता... योंही किसी से थोड़ी छेड़छाड़ कर ले, यह बात दूसरी है, मगर किसी को सताये-रुलाये, ऐसा कभी नहीं होता।"

"बाबा, तुमने ख़ुद ही तो कहा था कि उसने तुम्हारे मुंह पर तना दे मारना चाहा था?"

"अरे हां, चाहा तो था उसने! वह तो बात ही दूसरी थी! नाराज़ हो उठा था वह कि मैंने खिड़की में से क्यों झांका था! पर अगर कोई उसके मामले में टांग न अड़ाये, तो ऐसे आदमी को कोई हानि नहीं हो सकती उससे। तो

ऐसा है वह वन का मालिक! .. और जानते हो कैसे-कैसे भयानक काम किये हैं लोगों ने इस जंगल में। भगवान बचाये, राम-राम!"

बूढ़े बाबा ने सिर झुकाया और घड़ी भर के लिये चुप्पी साधे रहा। फिर जब उसने मेरी तरफ़ देखा, तो उसकी आंखों की धुंधलाई हुई पुतलियों के भीतर से मानो एक चिंगारी-सी निकली, किसी भूली-बिसरी, किसी सोई हुई याद की चिंगारी-सी।

"तो लो प्यारे, सुना ही देता हूं तुम्हें, क्या कुछ हो चुका है हमारे इस जंगल में। बहुत पुरानी, बरसों पुरानी बात है यह, यहीं ठीक इसी जगह घटी थी वह घटना... याद है मुझे, सपने जैसी लगती है। और जैसे ही जंगल ज़ोर से शोर मचाने लगता है, वैसे ही मुझे याद आने लगती है उस घटना की... चाहते हो सुनना? सुनोगे?"

"हां, हां, ज़रूर! सुनाइये बाबा।"

"तो सुना ही देता हूं, लो सुनो!"

२

"बहुत छोटा-सा था मैं कि मां-बाप चल बसे... एकदम अकेला रह गया मैं इस दुनिया में। तो ऐसी गुज़री अपने साथ! पंचायत बैठी और लोग-बाग लगे सोचने—'क्या किया

जाये इस यतीम का?' ख़ुद चौधरी को भी मेरी फ़िक्र...
हुआ यह कि तभी वन-रक्षक रोमान वहां आ पहुंचा। उसने
पंचायत से कहा–'मुझे दे दो यह छोकरा, मैं इसकी देखभाल
करूंगा, इसे खिलाऊं-पिलाऊंगा... मेरा जंगल में जी बहलेगा
और इसका पेट भरेगा...' तो यह कहा रोमान ने। पंचायत
ने कहा–'ठीक है, ले जाओ!' और वह मुझे अपने साथ
ले आया। इस तरह मैं पहुंचा इस जंगल में और वह दिन
और आज का दिन–बस सारी उम्र यहीं बीत गई।

"तो वह रोमान ही मुझे खिलाता-पिलाता। बड़ी उल्टी
खोपड़ी का आदमी था वह, भगवान बचाये ऐसे लोगों से!..
लम्बा-तड़ंगा, काली-काली आंखें। और आंखों में झांकने से
ही मालूम हो जाता था कि दिल भी काला है उसका। मामला
ही कुछ ऐसा था–सारी उम्र बिताई थी उसने जंगल में ही।
लोग-बाग कहते थे कि भालू उसके भाई हैं और भेड़िये भांजे-
भतीजे। सभी दरिंदों से उसकी जान-पहचान थी और क्या
मजाल कि किसी से डरे। पर जब लोगों को देखता, तो उनसे
कन्नी काटता... तो ऐसा था वह रोमान–सच कहता हूं
क़सम भगवान की! मुझे जब कभी वह नज़र भरकर देख
लेता था, तो ऐसे महसूस होता था कि मानो बिल्ली की
दुम मेरी पीठ सहला रही है... पर ख़ैर कुल मिलाकर
आदमी था दरियादिल–खिलाता-पिलाता मुझे ख़ूब अच्छी
तरह। दलिया बना-बनाकर देता, ख़ूब चर्बी डाल-डालकर।

जब कभी कोई बत्तख़ हाथ लग जाती, तो वह भी खिलाता मुझे। सच तो सच ही रहेगा, ख़ूब खिलाया-पिलाया उसने।

"तो इस तरह हम दोनों रहे जगल में। रोमान जंगल में जाता, तो मुझे भीतर बन्द कर जाता कि कोई दरिंदा न फाड़ खाये। बाद में बीवी भी बांध दी गई उसके पल्ले। ओक्साना नाम था उसका।

"चौधरी ने ही दिलवाई थी उसे बीवी। रोमान को बुलवा भेजा उसने गांव में और कहा —'रोमान ब्याह करना है तुम्हारा।' रोमान ने जवाब दिया—'मुझे क्या लेना-देना है बीवी से? जंगल में मेरा डेरा, क्या करूंगा मैं उसे वहां ले जाकर? और फिर बिना बीवी के ही मेरे तो बेटा भी है। नहीं करना मुझे शादी-ब्याह!' बात असल में यह थी कि रोमान कभी लड़कियों से घुला-मिला नहीं था! मगर चौधरी— वह भी ख़ूब घुटा हुआ आदमी था... जब याद आती है इस चौधरी की, तो सोचता हूं कि अब ऐसे चौधरी नहीं रहे, अब पहले जैसे चौधरी हो गुज़रे... तुम अपने ही को ले लो—कहते हैं कि तुममें भी चौधरियों का ख़ून है... शायद ठीक ही होगा, पर फिर भी वह बात नहीं तुममें, असली चौधरी वाली... ख़ैर योंही हो छोटे-मोटे चौधरी तुम भी, पर वैसे नहीं!

"वह था असली चौधरी, पुराने वक़्तोंवाले चौधरियों में से एक... सुनो, बताता हूं तुम्हें, कैसी धाक थी उसकी!

सौ-सौ जने डरते थे उस अकेले से! समझे! .. देखो प्यारे, यों तो अंडे में से ही निकलता है बाज़ भी और चूज़ा भी। बाज़ आसमान की तरफ़ उड़ान भरता है! ओह! जब वह वहां से चीख़ता है, तो बेचारे चूज़ों की तो क्या हस्ती, बड़े-बड़े मुर्ग़ों का दम निकल जाता है... तो इसे कहते हैं बाज़—असली चौधरी की नस्ल का परिन्दा, और चूज़ा—वह तो योंही होता है मामूली-सा देहाती नस्ल का जानवर...

"हां अभी तक याद है मुझे, छोटा-सा ही था तब मैं—एक दिन देखता क्या हूं कि देहाती जंगल से मोटे-मोटे लट्ठे लिये जा रहे हैं—यही रहे होंगे कोई तीस जने। दूसरी तरफ़ से चौधरी अकेला आ रहा था अपने घोड़े पर, मूंछों पर ताव देता हुआ। घोड़ा उसका अठखेलियां कर रहा था और वह ख़ुद इधर-उधर देख रहा था। ओह! देहातियों की नज़र पड़ गई चौधरी पर! बस, क्या था खलबली मच गई, रास्ता छोड़ दिया, बर्फ़ में घोड़े डाल दिये और टोपियां उतार लीं। बाद में जाने कैसी-कैसी मुसीबतों से लट्ठे निकाले उन्होंने बर्फ़ में से। कुछ न पूछो! और चौधरी, वह उसी तरह अपना घोड़ा कुदाता चला गया। देखा तुमने, उस अकेले आदमी के लिये रास्ता तंग था! चौधरी की त्योरी चढ़ती, देहातियों की जान सूख जाती, वह हंस देता, तो सब चहक उठते, नाक-भौं सिकोड़ लेता, तो सब के चेहरों का रंग उड़

जाता। चौधरी की बात काट दे, ऐसा माई का लाल पैदा नहीं हुआ था।

"मगर रोमान तो ज़ाहिर है कि जंगल में ही पला था, दुनिया के तौर-तरीक़े वह नहीं जानता था। चौधरी ने इसी लिये उसकी बात का कुछ बुरा नहीं माना।

"चौधरी ने कहा—'मैं चाहता हूं कि तू शादी कर ले। क्यों तू कर ले शादी यह मुझे मालूम है। ले ले ओक्साना।'

"'नहीं चाहता मैं शादी करना,' रोमान ने तड़ाक से इन्कार कर दिया। 'नहीं ज़रूरत मुझे बीवी की, ओक्साना ही क्यों न हो वह। बेशक काले चोर से हो जाये उसकी शादी, मेरी बला से! .. तो यह रहा माजरा!'

"चौधरी ने हुक्म दिया कि कोड़े लाये जायें। रोमान को बांधकर लिटा दिया गया है। चौधरी ने पूछा—

"'क्यों रे करेगा रोमान शादी?'

"'नहीं,' उसने जवाब दिया, 'नहीं करूंगा।'

"'करो इसकी पिटाई,' चौधरी ने हुक्म दिया।

"बस फिर क्या था, दे कोड़े पर कोड़ा। ख़ूब खाल उधेड़ी गई उसकी। रोमान भी बड़ा जानदार आदमी था, पर कब तक सहता कोड़ों की मार। आ गया रास्ते पर।

"'बस करो, बस करो,' उसने कहा। 'कर लूंगा शादी! बेशक उसे शैतान उठा ले जाये, मुझे क्या! मुझे क्या पड़ी

है कि एक औरत के लिये इतनी मुसीबत सहूं। ले आओ उसे, कर लूंगा शादी!'

"चौधरी की ड्योढ़ी में एक हंकवा पड़ा रहता था– ओपानास श्वीद्की नाम था उसका। जब रोमान को शादी के लिये ले जा रहे थे, वह ठीक तभी खेत से लौटा। उसने रोमान की विपदा सुनी और फट से जा गिरा चौधरी के पैरों में। पैरों में पड़ा हुआ चूमता जाये उन्हें...

"'हुज़ूर, क्या ज़रूरत पड़ी है आदमी को मारने-पीटने की। मुझसे कर दीजिये ओक्साना का ब्याह। क्या मजाल कि चूं भी करूं...'

"अपने आप तैयार हो गया ब्याह करने को। देखो तो कैसा कमाल का था वह आदमी, भगवान की क़सम!

"रोमान के तो मन के चीते हो गये, बाछें खिल गईं। झटपट उठकर खड़ा हो गया, शलवार ठीक की और कहा–

"'लो झंझट निपट गया। भलेमानस, तू क्या थोड़ी देर पहले नहीं आ सकता था? और ये चौधरी भी ख़ूब हैं– हमेशा ऐसा ही करते हैं। इतना भी न हुआ कि पूछ ही लेते कि क्यों भाई कोई अपनी मर्ज़ी से शादी करने को राज़ी है। पकड़ लिया आदमी को और करवा दी उसकी पिटाई। धर्म-ईमान वाले लोग भी भला कभी ऐसा करते हैं? छिः! ..'

"रोमान तो आदमी था कुछ दूसरे ही ढंग का! चौधरी को भी ख़ातिर में नहीं लाता था। जब गुस्से में आ जाता

था, तो क्या हिम्मत किसी की कि उसके मुंह लगे, बेशक चौधरी ही क्यों न हो। मगर चौधरी भी बड़ी चलती रक़म था! उसके दिमाग़ में कोई दूसरी ही बात थी। फिर हुक्म दे दिया उसने रोमान को घास पर लिटाने का। चौधरी ने कहा –

" 'मैं तुझ गधे का भला करना चाहता हूं और तू नख़रा करता है। अब तू अकेला पड़ा रहता है जैसे भालू गुफा में। तेरे घर जाने में न कोई मज़ा होता है न कोई लुत्फ़... उधेड़ते जाओ इस पाजी की खाल जब तक कह न उठे – बस करो! .. और ओपानास तू! तू जा भाड़ में! तू कौन – मैं ख़ामख़ाह। किसने बुलाया है तुझे तेरी दावत करने को। अपने आप ही मत पड़ इस फेर में, वरना समझ ले रोमान की तरह ही तेरी भी मेहमानी होगी।'

"इस बार रोमान सचमुच ही बहुत ग़ुस्से में था। कोड़े पर कोड़ा पड़ रहा था। जानते हो कैसे थे पहले वक़्तों के लोग? जब पिटाई शुरू करते थे, तो खाल ही उड़ती दिखाई देती थी। मगर रोमान था कि कोड़े खाता रहा और मुंह से कहकर नहीं दिया – बस करो! सहता गया, सहता गया, बहुत देर तक और आख़िर को उसने थूक दिया –

" 'बुरा हो तुम्हारा, एक औरत के लिये इस तरह पीट रहे हो एक धर्म-ईमान माननेवाले को! मारते जाते हो, गिनते तक भी नहीं! बस करो अब! राम करे तुम्हारे हाथ

टूट जायें! शैतान ने सिखा दिया तुम्हें कोड़े लगाना! पूला समझ लिया है क्या मुझे, जो इस बुरी तरह धुनते चले जा रहे हो। अंधेर है अंधेर, कर लूंगा शादी।'

"चौधरी ने हंसते हुए मज़ाक़ किया–

"'अच्छा ही हुआ, तुम्हारी पिटाई हो गई। अब तुम शादी के वक़्त बैठ तो पाओगे नहीं, इसलिये नाचते फिरोगे...'

"बड़ा ही मज़ेदार आदमी था चौधरी, बहुत ही मज़े का आदमी था। मगर बाद में उसपर जो गुज़री, भगवान करे धर्म-ईमान वाले किसी आदमी पर न गुज़रे! सच कहता हूं, भगवान किसी को भी एसा बुरा दिन न दिखाये, किसी सूदख़ोर पर भी ऐसी मुसीबत न आये। मैं तो ऐसा ही सोचता हूं...

"तो ख़ैर रोमान का ब्याह हो गया। जवान बीवी को घर ले आया। शुरू-शुरू में तो उसे डांटता-डपटता, कोड़े खाने के ताने-बोलियां देता–

"'इस लायक थोड़े ही थी तू कि कोई अपनी खाल उधड़वाता।'

"कई बार ऐसा भी हुआ कि वह जंगल से लौटा और लगा उसे धक्के देकर घर से बाहर निकालने–

"'निकल यहां से! नहीं रखनी औरत मुझे अपने झोंपड़े में! तेरी छाया भी नहीं देखना चाहता! मेरे झोंपड़े में औरत सोये, यह मुझे पसन्द नहीं। दम घुटने लगता है मेरा।'

"हां !

"मगर बाद में ख़ैर सब्र का घूंट भर लिया उसने। ओक्साना घर की ख़ूब अच्छी तरह सफ़ाई करती, उसे लीपती-पोतती, बर्तन-भांडों को चमकाती, सारा घर चमचम करता रहता। रोमान को अनुभव होने लगा कि कुछ बुरी नहीं औरत। धीरे-धीरे आदी हो गया उसका। प्यारे, आदी ही नहीं हो गया, दिल में समा गई, वह उसे प्यार करने लगा। भगवान की क़सम, झूठ नहीं बोलता हूं! तो यह रहा रोमान का क़िस्सा। अच्छी तरह से जान-समझ गया जब अपनी बीवी को तो लगा कहने–

"'भला हो चौधरी जी का, मुझे रास्ते पर डाल दिया। और हां, मैं तो सचमुच ही बड़ा बेवक़ूफ़ आदमी था: बेकार कोड़े पर कोड़े खाता रहा। अब देखता हूं कि कुछ बुरा नहीं रहा। सच तो यह है कि अच्छा ही रहा यह क़िस्सा!'

"इसके बाद बहुत दिन गुज़र गये, मालूम नहीं कितने। एक दिन क्या हुआ कि ओक्साना चारपाई पर लेटकर कराहने-चीख़ने लगी। मैं जो शाम को सोया तो सुबह उठा। सुनता क्या हूं कि कोई बारीक-सी आवाज़ में रो रहा है। सोचा, हो न हो, बच्चा जना है ओक्साना ने! सचमुच ऐसा ही निकला भी।

"बहुत समय तक नहीं जिया वह बच्चा इस धरती पर। बस इतना ही समझो, सुबह से शाम तक। शाम होते तक

उसकी आवाज़ बन्द हो गई... ओक्साना रो पड़ी। रोमान ने उससे कहा—

"'बच्चा तो अब रहा नहीं। जब वही नहीं रहा, तो पादरी को बुलाकर क्या करेंगे। सनोबर के नीचे दफ़ना देते हैं।'

"तो ऐसे कहा रोमान ने। और केवल कहा ही नहीं, झटपट कर भी डाला—छोटी-सी क़ब्र खोदी और उसे दफ़ना दिया। वह देखो वह रहा पुराना ठूंठ, बिजली मार गई थी उसे... वही है वह सनोबर का पेड़, जहां रोमान ने बच्चे को दफ़नाया था। देखो प्यारे, एक बात बताऊं तुम्हें, अभी तक ऐसा होता है कि जैसे ही सूरज डूबता है और जंगल के ऊपर जगमगाता सितारा चमकने लगता है, एक चिड़िया उड़ती हुई आती है और चीख़ती है। ओह, कैसा दर्द होता है उसकी चीख़ में! दिल भर-भर आता है उसकी चीख़ सुनकर! यह है बिना सलीब के भटकनेवाली आत्मा! सलीब मांगती है चीख़-चीख़कर। भई, जिन लोगों ने किताबें पढ़ रखी हैं, सब कुछ जानते-समझते हैं, कहा जाता है कि वे उसे सलीब दे सकते हैं। फिर नहीं उड़ती फिरेगी यह आत्मा... और देखो न हम लोग तो हैं बनवासी, न कुछ जानें, न समझें। वह बेचारी आत्मा उड़ती फिरती है, सलीब मांगती है, धर्म-ईमान चाहती है और हम बस इतना ही कह पाते हैं—'उड़ जा, उड़ जा बेचारी दुखी आत्मा! कुछ भी तो मदद नहीं कर सकते हम तुम्हारी!' बेचारी रो-धो के

उड़ जाती है और फिर आ जाती है। ओह प्यारे, बड़ा रहम आता है बेचारी आत्मा पर!

"कुछ समय बाद ओक्साना भली-चंगी हो गई, हर रोज़ बच्चे की छोटी-सी क़ब्र पर जा बैठती। क़ब्र पर जा बैठती और रोती ज़ोर-ज़ोर, इतने ज़ोर से कि जंगल भर में गूंजते उसके बैन। इस तरह तड़पती वह अपने बच्चे के लिये। रोमान को बच्चे के मरने का तो ग़म नहीं था, पर ओक्साना के लिये उसे दुख होता। जंगल से लौटता रोमान, ओक्साना के क़रीब जा खड़ा होता और उसे कहता—

"'तुम तो बिल्कुल पगली हो गयी, बन्द करो यह रोना-धोना! आख़िर रोया भी जाये तो किस लिये! एक बच्चा मर गया तो दूसरा हो जायेगा। और इस बार और भी अच्छा हो जायेगा। फिर एक बात और भी है—हो सकता है कि वह मेरा हो ही नहीं। मैं तो नहीं जानता न। लोग कहते हैं... पर ख़ैर इस बार जो होगा, वह होगा मेरा बच्चा।'

"जब वह ऐसा कहता, तो ओक्साना बुरा मानती। होता यह कि रोना-धोना बन्द कर देती और लगती उसकी लानत-मलामत करने, उसे जली-कटी सुनाने। मगर रोमान उसकी बातों का बुरा न मानता। वह कहता—

"'किस लिये तू बिगड़ रही है, बक-झक कर रही है? आख़िर मैंने बुरा ही क्या कहा है? यही तो कहा है कि मुझे सच-झूठ की कुछ ख़बर नहीं। सो भी इसलिए कि यहां आने

के पहले तू मेरी नहीं थी और न जंगल में रहती ही थी। तू रहती थी दुनिया वालों के बीच, लोगों के बीच। अब मैं भला कैसे जान सकता हूं कि क्या सच है? अब तू जंगल में रहती है, अब सब ठीक है। जब मैं फ़ेदोस्या धाय को बुलाने गांव गया, तो उसने यही कहा था–'अरे रोमान, इतनी जल्दी तुम्हारे घर बच्चा भी हो गया।' मैंने उसे जवाब दिया–'मुझे भला क्या मालूम, जल्दी हुआ है कि देर से...' पर ख़ैर, तुम यह अपना रोना-धोना बन्द कर दो, वरना मेरा पारा चढ़ जायेगा और देखना कि मैं कहीं तुम्हारी मरम्मत ही न कर डालूं।'

"ओक्साना बकबक करती जाती, भौंकती रहती और फिर चुप हो जाती।

"ऐसा भी होता कि वह उसे बुरा-भला कहती रहती, डांटती जाती और कभी-कभी तो पीठ पर दो-चार हाथ भी जमा देती। मगर जैसे ही रोमान गुस्से में आता, तो ठंडी पड़ जाती–डरती थी उससे। उसे सहलाती, पुचकारती, चूमती और उसकी आंखों में आंखें डाल देती... और मेरा रोमान था कि बस मोम हो जाता। देखो न बात यह है प्यारे... तुम तो शायद यह सब कुछ नहीं जानते हो, पर मैं ठहरा बूढ़ा-खूसट! बेशक अपनी शादी नहीं की, मगर फिर भी बहुत ज़माना देखा है मैंने। जवान औरत जब मीठे-मीठे प्यार करने लगती है, तो ख़सम को चाहे कितना भी

ग़ुस्सा क्यों न आया हो, चुटकी बजाते में हवा हो जाता है। मैं अच्छी तरह समझता हूं इनके तिरिया-चरित्तर! ओक्साना बड़ी चिकनी-सी थी, एकदम जवान। अब तो ऐसी कहीं नज़र ही नहीं आती हैं। ईमान की बात कहूं तुमसे, दोस्त, अब कहां वह औरतें जो पहले होती थीं।

"एक बार क्या हुआ कि जंगल में नरसिंघा बज उठा–तरा-ता, तरा-तरा-ता-ता-ता। ऐसी गूंज उसकी जंगल में कि क्या कहने, बहुत ही अच्छा लगा। मैं तब छोकरा-सा था, नहीं जानता था कि वह क्या चीज़ है। देखता क्या हूं कि पक्षी घोंसलों से निकल-निकलकर उड़ रहे हैं, पंख फड़फड़ा रहे हैं, चीख़ रहे हैं, ख़रगोश कान दबाये हुए इधर-उधर दीवाने-से भागे जा रहे हैं। सोचा, शायद यह कोई दरिंदा है, जो पहले कभी नहीं देखा मैंने। वह दरिंदा ही इतने अच्छे ढंग से चीख़ता है। पर नहीं, कोई दरिंदा-वरिंदा नहीं, वह तो चौधरी था, जो घोड़े पर सवार चला आ रहा था और नरसिंघा बजा रहा था। चौधरी के पीछे-पीछे कुत्तों की ज़ंजीरें थामे हुए हंकवे घोड़ों पर आ रहे थे। सभी हंकवों में से ख़ूबसूरत था वही ओपानास श्वीद्की। वह चौधरी के पीछे-पीछे था नीली क़ज़ाकीन (विशेष पुरानी रूसी पोशाक) में बहार दिखाता हुआ। उसकी टोपी के ऊपरी हिस्से पर कढ़ाई का सुनहरा काम किया हुआ था। घोड़ा उसका अठखेलियां कर रहा था। कंधों से लगी हुई बन्दूक़

चमक रही थी और पेटी के साथ एक तरफ़ को लटका हुआ था बन्दूरा (एक उक्रइनी बाजा)। बहुत मन चढ़ा हुआ था ओपानास चौधरी के। भई, मन तो चढ़ना ही था, ख़ूब बढ़िया बजाता था वह बन्दूरा और गाता भी था तो ख़ूब ही। कैसा बांका, कैसा ख़ूबसूरत आदमी था यह ओपानास, यह मत पूछो! बला का ख़ूबसूरत था! चौधरी भी भला क्या बराबरी कर सकता था ओपानास की इस मामले में! चौधरी की चांद निकल आई थी, नाक उसकी लाल थी और आंखें—ख़ैर वैसे तो वे हंसती हुई थीं, मगर ओपानास की आंखों के सामने तो पानी भरती थीं। होता यह था कि ओपानास जैसे ही मेरी ओर देखता—मैं था छोकरा-सा, मेरा हंसने को मन होता। मगर मैं कोई लड़की थोड़े ही था। सुनने में आया था कि ओपानास के बाप-दादा ज़ापोरोज्ये के कज़्ज़ाक थे, सेच के मैदानों में आज़ादी की ज़िंदगी बिताते थे। वहां के लोग बड़े चिकने-चिकने, बड़े सुन्दर-सुडौल और फुर्तीले होते थे। अब प्यारे, तुम ख़ुद ही सोचके देख लो कि कहां तो वे लोग जो भाला लेकर पक्षियों की तरह हमवार मैदानों में घोड़ों पर उड़े फिरते हैं और कहां हम लोग हैं कि लकड़ी काटते-काटते ही उम्र बीत जाती है। फ़र्क़ तो होना ही हुआ!

"मैं भागकर बाहर आया। देखा कि चौधरी दरवाज़े तक आ पहुंचा है। उसका घोड़ा रुका और उसी वक़्त हंकवों के

घोड़े भी रुक गये। रोमान झोंपड़े से बाहर निकला, उसने चौधरी के घोड़े की लगाम थामी और चौधरी नीचे उतरा। रोमान ने झुककर नमस्कार किया।

"'कैसे गाड़ी चल रही है?' चौधरी ने रोमान से कहा।

"'कौनसी गाड़ी, हुज़ूर?'

"तो देखा तुमने रोमान चौधरी को उसी तरह जवाब नहीं दे सका जैसे देना चाहिये था। चौधरी के हंकवों को हंसी आ गई और चौधरी भी हंस दिया।

"आपका हाल तो अच्छा है?"

"शुक्रिया हुज़ूर, मैं तो ठीक-ठाक हूं।"

"'शुक्र है भगवान का कि तू ठीक-ठाक है,' चौधरी ने कहा। 'कहां है तेरी बीवी?'

"'कहां होगी बीवी? वहीं है, जहां उसे होना चाहिये। घर में...'

"'ठीक है, हम घर में चलेंगे,' चौधरी ने कहा, 'और देखो तुम लोग तब तक घास पर क़ालीन बिछा दो और बाक़ी सब चीज़ें तैयार कर लो। पहली बार आज हम इस जवान जोड़े को बधाई देंगे।'

"इतना कहकर वे चल दिये घर के भीतर–चौधरी और ओपानास, उनके पीछे-पीछे नंगे सिर रोमान और फिर बोगदान। बोगदान–यह था मुख्य हंकवा और चौधरी का सबसे अधिक भरोसे का नौकर। ऐसे नौकर भी अब इस धरती

"देखता क्या हूं कि चौधरी झोंपड़े के बीचोंबीच जाकर खड़ा हो गया है, मूंछों पर ताव देता हुआ, मुस्करा रहा है। रोमान भी उसके पीछे खड़ा था टोपी को हाथों से मलता हुआ। पर ओपानास दीवार के साथ पीठ लगाये अकेला खड़ा था, लुटा-लुटा-सा, बुरे मौसम में बलूत के पेड़ की तरह। हवाइयां उड़ रही थीं उसके चेहरे पर, मुरझाया-मुरझाया-सा था वह...

"वे तीनों ओक्साना की ओर घूमे। सिर्फ़ अकेला बूढ़ा बोगदान एक कोने में एक तख़्ते पर बैठ गया, बाल नीचे को गिराकर। वह चौधरी के हुक्म के इन्तज़ार में था। ओक्साना कोने में चूल्हे के पास खड़ी थी, आंखें झुकी हुई थीं उसकी और उसके गाल ऐसे लाल थे जैसे जई के पौधों के बीच पोस्त का लाल फूल। ओह, वह तो जैसे साफ़ तौर पर यह समझ रही थी कि उसके कारण कोई न कोई मुसीबत आयेगी। देखो प्यारे, यह भी मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि अगर तीन आदमी एक ही औरत की ओर देखने लगते हैं, तो समझ लो ज़रूर कोई न कोई आफ़त आयेगी। अगर और अधिक बुरा नहीं होगा, तो हाथापाई तो होगी ही। मैं अच्छी तरह जानता हूं यह, ख़ुद अपनी आंखों से देख चुका हूं।

"चौधरी ने हंसकर कहा –

"'रोमान सुना तो, अच्छी बीवी दिलवाई है न मैंने तुझे?'

"'ठीक है, औरत जैसी औरत है, ख़ासी है सरकार।'

"ओपानास ने ये शब्द सुने तो कंधे उचकाये, नज़र ऊपर की ओर ओक्साना की ओर देखकर अपने आप से कहा—

"'हां बीवी तो है! काश कि किसी इस जैसे बुद्धू के पल्ले न पड़ती।'

"रोमान के कानों में पड़ गये ये शब्द, ओपानास की ओर मुड़ा और बोला—

"'ओपानास मियां, किस लिये आपको मैं बुद्धू नज़र आता हूं, ज़रा बताइये तो...'

"'इसलिये हो तुम बुद्धू कि अपनी बीवी की रखवाली नहीं कर सकते हो।'

"देखा कैसी बात कही उससे ओपानास ने! चौधरी ने पांव पटका, बोगदान ने सिर झटका। रोमान घड़ी भर को सोच में पड़ गया। फिर उसने सिर ऊपर उठाया और चौधरी की ओर देखते हुए कहा—

"'किससे रखवाली करनी है मुझे उसकी,' ओपानास से कहते और चौधरी की ओर देखते हुए उसने पूछा। 'जंगली जानवरों के सिवा यहां है ही कौन, आदमी तो आदमी, शैतान भी नहीं। ले-देकर कभी-कभार चौधरी आ जाते हैं। किससे बचाना है मुझे उसे। देख रे कज़्ज़ाक बच्चे, मुझे गुस्सा मत दिला, वरना ऐसे झोंटे खींचूंगा कि अक़्ल ठिकाने आ जायेगी।'

"मार-पिटाई की नौबत बस आ ही जाती। वह तो चौधरी बीच में आ गया, उसने पांव पटका और वे ठण्डे हो गये।

"'चुप हो जाओ, शैतान के बच्चो!' चौधरी ने कहा। 'लड़ने-भिड़ने थोड़े ही आये हैं हम यहां। इस जवान जोड़े को बधाई देनी है हमें तो और रात को शिकार के लिये जाना है दलदल में। चलो, आओ मेरे पीछे!'

"चौधरी मुड़ा और झोंपड़े से बाहर चला। इसी बीच हंकवों ने वृक्षों के नीचे खाने-पीने की सारी तैयारी कर दी थी। चौधरी के पीछे-पीछे बोगदान था। ओपानास ने रोमान को ड्योढ़ी में रोक लिया।

"'मुझसे नाराज़ मत हो मेरे भाई,' कज़्ज़ाक ने कहा। 'जो कुछ ओपानास तुझसे कहता है, उसे ध्यान से सुन। देखा था न तुमने कि कैसे मैं चौधरी के पैरों में लोटा था, उसके जूते चूमे थे मैंने कि वह ओक्साना का हाथ मेरे हाथ में दे दे? भगवान तेरा भला करे, भले आदमी... पादरी ने तुम दोनों की शादी करवाई है, शायद ऐसा ही लिखा था क़िस्मत में! मगर अब मेरा दिल यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि यह जानी दुश्मन, यह चौधरी उस तेरी बीवी की और तेरी खिल्ली उड़ाये। हाय, कोई नहीं जानता कि क्या गुज़रती रहती है मेरे दिल पर... जी में आता है कि इस चौधरी के बच्चे और उस लौंडिया को बिस्तर के बजाय गीली मिट्टी में सुला दूं...'

"रोमान ने ध्यान से उसकी तरफ़ देखा और पूछा–

"'ए कज़्ज़ाक, कहीं सचमुच तेरा दिमाग़ तो नहीं चल निकला?'

"ओपानास ने बहुत धीमे-से इसका जवाब दिया, जो मैं नहीं सुन सका। वे ड्योढ़ी में खुसुर-फुसुर करते रहे। फिर रोमान ने उसका कंधा थपथपाकर कहा–

"'ओह ओपानास, ओपानास! कैसे-कैसे दुष्ट और मक्कार लोग पड़े हैं इस दुनिया में! मुझे कुछ ख़बर ही नहीं। मैं जंगल का वासी, कैसे जान पाता यह सब। ए चौधरी, तेरी मौत ही तुझे यहां खींच लाई है!..'

"'अच्छा अब तू जा और देख किसी को कानों कान ख़बर नहीं होनी चाहिये इस बात की। बोगदान से तो बहुत ही सम्भलकर रहना। तू आदमी है कमसमझ और चौधरी का वह कुत्ता है बड़ा धूर्त्त! और सुन चौधरी की वोद्का कहीं बहुत मत पी जाना। अगर वह तुझे अपने हंकवों के साथ दलदल की तरफ़ भेजे और ख़ुद यहां ठहरना चाहे, तो तू पुराने बलूत तक उन्हें ले जाकर दलदल की फेर वाली डगर की तरफ़ इशारा करके कहना–तुम लोग इधर से जाओ और मैं जंगल के बीच से, सीधे रास्ते से आऊंगा। फिर झटपट यहां लौट आना।'

"'ठीक है,' रोमान ने जवाब दिया। 'शिकार की तैयारी कर लूं। बन्दूक़ में छर्रे नहीं, गोली भर लेता हूं–परिन्दों का नहीं, मोटे भालू का शिकार जो करना है मुझे।'

"तो वे बाहर आये। चौधरी तो पहले से ही क़ालीन पर डटा हुआ था। हुक्म दिया उसने कि बोतल और प्याली बढ़ाई जाये। उसने वोद्का प्याली में डाली और रोमान के सामने कर दी। बहुत कमाल की थी चौधरी की बोतल और प्याली! और वोद्का – वह उनसे भी कहीं बढ़-चढ़कर। एक प्याली गले से नीचे उतरी नहीं कि जी बाग़-बाग़। दूसरी प्याली पी, तो दिल उछलकर सीने में। आदमी को पीने की आदत न हो, तो तीसरी प्याली पीते ही ज़मीन पर लोट-पोट होता फिरे, अगर औरत उठाकर तख़्ते पर न लिटा दे।

"देखो तुम्हें बताता हूं, बहुत चालाक था चौधरी! यह थी उसकी चाल कि रोमान को पिला-पिलाकर बेसुध कर दे। मगर ऐसी वोद्का कहां से आती, जो रोमान पर अपना जादू चला पाती। वह चौधरी के हाथ से प्याली ले-लेकर पीता जाता था – एक प्याली पी उसने, दूसरी पी, तीसरी पी। आंखें ऐसी हो गईं जैसे कि भेड़िये की, अंगारे जैसी लाल। और हां, अपनी काली-काली मूंछों को ताव देता रहा। चौधरी तो झल्ला उठा –

"'ले और पी कमीने! कैसे मज़े से प्याली पर प्याली चढ़ाता जा रहा है, पलक तक नहीं झपकता है! कोई दूसरा होता, तो कभी का चीं बोल गया होता, रो दिया होता। और यह, देखो तो इसे भले लोगो, ऊपर से हंस रहा है...'

"दुष्ट चौधरी अच्छी तरह जानता था कि अगर कोई आदमी उसकी वोद्का पीकर रो पड़ता है, तो घड़ी भर में वह अपनी खोपड़ी मेज़ पर पटक देता है। पर इस बार उसे जिस पट्ठे से पाला पड़ा वह दूसरी ही मिट्टी का निकला।

"'मैं भला क्यों रोने लगा?' रोमान ने कहा। 'यह तो अच्छा भी न होता। मेरे मेहरबान चौधरी आप तो मुझे बधाई देने आये हैं और मैं क्या औरतों की तरह रोने बैठ जाता। शुक्र है भगवान का कि ऐसी कोई बात ही नहीं कि मैं आंसू बहाऊं। मैं क्यों रोऊं, अच्छा है रोयें मेरे दुश्मन।'

"'इसका मतलब है कि तुम ख़ुश हो?' चौधरी ने पूछा।

"'बेशक! न ख़ुश होने की वजह ही क्या हो सकती है?'

"'याद है कि कैसे कोड़ों की मदद से तुम्हारी शादी की थी?'

"'वह भला कैसे भूल सकता हूं! इसी लिये तो कहता हूं कि बेसमझ था, नहीं जानता था कि क्या मीठा है और क्या कड़वा है। कोड़ों की मार कड़वी थी, मगर मैंने उसे औरत से बेहतर समझा। बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं आपको, मेरे कृपालु चौधरी, कि आपने मुझे उल्टी खोपड़ी के आदमी को शहद चाटना सिखा दिया।'

"'ठीक है, ठीक है,' चौधरी ने उसे कहा। 'इसलिये अब तू भी मेरा एक काम कर – मेरे हंकवों के साथ दलदल

में जा और बहुत-से परिन्दे मार ला। शिकार का मज़ा तो यह है कि तू जंगली तीतर मार लाये।'

"'कब आप हमें भेजना चाहते हैं दलदल में?' रोमान ने पूछा।

"'बस यही थोड़ी और पीते हैं, ओपानास का गाना-बजाना होगा और फिर तुम लोग चल देना भगवान का नाम लेकर।'

"रोमान ने चौधरी की ओर देखते हुए कहा–

"'यह तो आपने बड़ी मुश्किल कर दी–देर हो चुकी है, दलदल दूर है, फिर जंगल में ज़ोर की हवा चल रही है और रात को आयेगा तूफ़ान। ऐसा होशियार परिन्दा अब कहां से आयेगा कि जिसका शिकार हो सके?'

"चौधरी को इस बीच चढ़ गई थी और वह बरी तरह चिढ़ गया। चौधरी के हंकवे भी कानाफूसी करने लगे कि 'रोमान ठीक तो कहता है, जल्द तूफ़ान आनेवाला है।' चौधरी के कान में भी भनक पड़ गई और बस क्या था–आग बगूला हो उठा, प्याली फेंक दी और जैसे ही उसने सब को एक नज़र घूरा कि सब ठंडे पड़ गये।

"नहीं डरा तो अकेला ओपानास! चौधरी के कहने पर वह बन्दूरा हाथ में थामे गाने-बजाने के लिये सामने आया। वह बन्दूरा के तार कसने लगा। चौधरी को बग़ल से झांकते हुए उसने कहा–

"'मेहरबान चौधरी! ज़रा सोचिये तो सही! कभी कहीं ऐसा देखा-सुना है कि रात को, और सो भी आंधी-पानी के समय और ऐसे जंगल में जहां हाथ को हाथ सुझाई न दे, कोई पक्षियों का शिकार करने गया है?'

"ऐसा दिलेर था ओपानास! ज़ाहिर था कि बाक़ी थे चौधरी के दास, जान निकलती थी उनकी उसके सामने, और वह था आज़ाद आदमी, कज्ज़ाक बच्चा। छोटा-सा ही था कि बन्दूरा बजानेवाला एक बूढ़ा कज्ज़ाक उसे अपने साथ ले आया था उक्रइना से। वहां एक नगर है ऊमान, जहां कोई गड़बड़ हो गई थी। उसी गड़बड़ में बूढ़े कज्ज़ाक की आंखें निकाल ली गई थीं, कान काट दिये गये थे और उस हालत में ही उसे वहां से चलता कर दिया गया था। इसी छोकरे ओपानास की उंगली पकड़े-पकड़े वह नगर-नगर, गांव-गांव घूमता रहा और फिर हमारे देश में आ निकला। बूढ़े चौधरी को गाने सुनने का शौक़ था, उसने उसे अपने पास रख लिया। बढ़ा कज्ज़ाक चल बसा और ओपानास चौधरी की ड्योढ़ी में ही रहा, वहीं बड़ा हुआ। वह नये चौधरी को भी अच्छा लगा और इसलिये कभी-कभार उसकी चुभती हुई बात भी सह जाता था। कोई और ऐसी बात कह देता, तो वह उसकी खाल खिंचवाकर उसमें भुस भरवा देता।

"इस बार भी ऐसा ही हुआ। शुरू में तो चौधरी का

पारा चढ़ा। ऐसा लगा कि वह कज़्ज़ाक की मरम्मत कर डालेगा, मगर नहीं, उसने झल्लाकर ओपानास से कहा —

"'अरे ओपानास, ओपानास, तू आदमी तो है समझदार, मगर इतना नहीं जानता कि दरवाज़े के बीच नाक नहीं डालनी चाहिये। अगर किसी ने दरवाज़ा बन्द कर दिया तो...'

"देखा तुमने कैसी पहेली बुझवाई चौधरी ने उससे! कज़्ज़ाक फ़ौरन बात समझ गया और उसने जवाब दिया एक गाने में। अगर कज़्ज़ाक के गाने का मतलब चौधरी की समझ में आ जाता, तो बाद में शायद उसकी बीवी को उसकी जुदाई में आठ-आठ आंसू न बहाने पड़ते।

"'धन्यवाद तुम्हारा चौधरी कि तुमने अक़्ल सिखाई,' ओपानास ने कहा। 'अब मैं सुनाता हूं तुम्हें गाना, तुम सुनो उसे।'

"इतना कहकर उसने बन्दूरा के तार छेड़े।

"फिर उसने सिर ऊपर उठाकर आकाश को देखा कि कैसे वहां बाज़ पंख फैलाता है, कैसे वहां हवा बादलों को इधर-उधर भगाती है, उनसे खिलवाड़ करती है। उसने कान खड़े किये और सुना कि सनोबर के वृक्ष कैसे ज़ोर से सांय-सांय करते हैं।

"फिर से उसने बन्दूरा के तार झनझनाये।

"प्यारे, तुमने नहीं सुना कैसे बजाता था ओपानास श्वीद्की बन्दूरा! अब कहां सुन पाओगे तुम ऐसा बन्दूरा! वैसे बाजा-

बाजा तो वह कुछ ख़ास नहीं है, पर जब किसी उस्ताद के हाथ में आ जाता है, तो समां बांध देता है। होता यह था कि जब ओपानास की उंगलियां बन्दूरा के तारों पर दौड़ती थीं, तो वे बता देते थे कि बुरे मौसम में कैसे अन्धेरा जंगल सांय-सांय करता है, स्तेपी के ख़ाली समतल मैदानों में हवा कैसे चीख़ती-दहाड़ती है और टीले पर बनी कज़्ज़ाक की क़ब्र पर कैसे सूखी घास सरसराती है।

"नहीं मियां, नहीं रहे अब असली बन्दूरा बजानेवाले! आजकल यहां सभी तरह के लोग आते हैं। ऐसे कि जो सिर्फ़ पोलेस्ये ही नहीं, और भी बहुत-सी जगहों पर घूम चुके हैं। वे पूरा उक्रइना देख आये हैं—चीगीरीन, पोल्तावा, कीयेव और चेर्कासी का चक्कर लगा आये हैं। वे कहते हैं कि बन्दूरा बजानेवाले अब नहीं रहे, मेलों-ठेलों और बाज़ार-मंडियों में भी अब उनका बन्दूरा सुनाई नहीं देता। भीतर घर में मेरे पास एक पुराना बन्दूरा अभी तक दीवार से लटका हुआ है। ओपानास ने इसी पर मुझे बजाना सिखाया था। मगर मुझसे किसी ने नहीं सीखी यह उस्तादी। अपने तो चलाचली के दिन हैं और जैसे ही सांस बाद होगी, वैसे ही बन्दूरा की झंकार भी हमेशा के लिये सो जायेगी। ढूंढ़े से भी नहीं मिलेगा दुनिया में कोई बन्दूरा बजानेवाला। यह है असली बात!

"ओपानास ने धीमी-धीमी आवाज़ में गीत गाया। ओपानास की आवाज़ ऊंची नहीं थी और यह गाता था दर्द और

सोच में डूब-डूबकर। उसका गीत दिल पर मानो चोट करता था। और प्यारे, कज़्ज़ाक ने वह गाना चौधरी के लिये अपने मन से ही गढ़ा था। फिर कभी सुनाई नहीं पड़ा वह गाना। बाद में कई बार जब मैंने ओपानास से कहा कि गुरु वह गाना सुना दो, वह राज़ी नहीं हुआ।

"'जिसके लिये था वह गाना, वही अब दुनिया में नहीं रहा,' वह कहता।

"उस गाने में कज़्ज़ाक ने चौधरी को सब कुछ सही-सही बता दिया था कि उसके साथ क्या बीतनेवाली है। चौधरी सुनता रहा, रोता रहा, आंसू बह-बहकर मूंछों तक आते रहे, पर ज़ाहिर है कि कुछ नहीं समझा वह उसका मतलब।

"वह गाना तो मुझे याद नहीं, योंही कुछ पंक्तियां अटकी रह गई हैं दिमाग़ में।

"कज़्ज़ाक ने इवान नाम के किसी चौधरी को सम्बोधित करके वह गाना गाया था।

"'इवान चौधरी, अरे चौधरी! ..
तू सचमुच बेहद समझदार...
इतना तो है मालूम तुझे
जब बाज़ गगन में उड़ता है
कौवे को मार गिराता है...
इवान चौधरी, अरे चौधरी! ..
पर यह तुझको मालूम नहीं:

यह भी इस दुनिया में होता,
जब बाज़ घोंसले में घुसता,
कौवे के घर में जाता है,
तब कौवा मार गिराता है...
इवान चौधरी, अरे चौधरी...'

"कुछ इसी तरह से आगे था वह गाना। मुझे लगता है कि मानो अभी भी मैं सुन रहा हूं यही गाना और देख रहा हूं उन लोगों को अपने सामने। मैं देखता हूं कि कज़्ज़ाक बन्दूरा लिये सामने खड़ा है, चौधरी क़ालीन पर बैठा है, गर्दन झुकाये और रो रहा है। उसके नौकर-चाकर सभी ओर से उसे घेरे हुए हैं, एक-दूसरे को कोहनियां मार रहे हैं, बूढ़ा बोगदान सिर झुला रहा है... जंगल जैसे इस समय है, वैसे ही तब भी सांय-सांय कर रहा था, धीरे-धीरे और दर्द पैदा करते हुए बज रहा था बन्दूरा और कज़्ज़ाक गा रहा था कि कैसे चौधरी की बीवी, इवान की बीवी उसकी लाश पर बिलख-बिलखकर रो रही है–

"'अरे चौधरी बीवी अब
तड़प-तड़पकर नीर बहाये
हाय! चौधरी के उस शव पर
काला कौवा शोर मचाये।'

"चौधरी नहीं समझा, तो नहीं समझा इसका मतलब। उसने आंसू पोंछे और कहा—

"'रोमान, हो जाओ तैयार! ए छोकरो, हो जाओ घोड़ों पर सवार! और ओपानास तू भी इनके साथ जायेगा—बस काफ़ी हो गया गाना-बजाना!.. अच्छा है तेरा गाना, मगर जो कुछ गीतों-गानों में गाया जाता है, वह दुनिया में सचमुच कभी नहीं होता।'

"उधर कज़्ज़ाक का यह हाल था कि दिल पिघलकर मोम हो गया था, आंखों में कुहासा-सा छा गया था।

"'ओह चौधरी, चौधरी,' ओपानास ने कहा—'हमारे यहां के बड़े-बूढ़े कहते हैं कि कहानी में भी सच होता है, गाने में भी सच होता है। मगर कहानी का सच होता है लोहे के समान। बार-बार लोगों के हाथों में घूमता रहता है, तो ज़ंग लग जाता है उसे... मगर गाने का सच है, सोने के समान। कितना ही बेशक घूमे लोगों के हाथों में, कभी ज़ंग नहीं लगता उसे... हां तो ऐसा कहते हैं बड़े-बूढ़े!'

"चौधरी ने हाथ झटक दिया—

"'कहते होंगे ऐसा तुम्हारे देश में, मगर हमारे यहां नहीं कहते ऐसा... अच्छा अब तू चलता-फिरता नज़र आ—कान खा गया है।'

"कज़्ज़ाक घड़ी भर तो चुप रहा और फिर अचानक चौधरी के पैरों में गिर पड़ा ज़मीन पर। मिन्नत करते हुए बोला—

"'मेरी मानो, चौधरी! घोड़े पर सवार होकर अपनी बीवी के पास चले जाओ। बहुत बुरे-बुरे ख़्याल आ रहे हैं मेरे मन में।'

"अब क्या था, चौधरी लाल-पीला हो गया। उसने कज़्ज़ाक को ठोकर मारकर कुत्ते की तरह दुतकार दिया–

"'दूर हो जा मेरी आंखों के सामने से! तू कज़्ज़ाक नहीं, औरत है, औरत! चला जा यहां से, वरना समझ ले कि तेरी शामत आई... अरे कमीनो तुम क्या मुंह ताक रहे हो खड़े-खड़े? या फिर यह कि मैं अब तुम्हारा चौधरी नहीं रहा? ऐसी ख़बर लूंगा तुम्हारी कि जैसी मेरे बाप-दादा ने कभी तुम्हारे बाप-दादा की भी न ली होगी! ..'

"ओपानास ऐसे उठकर खड़ा हुआ मानो उमड़ता-घुमड़ता काला बादल हो। उसने रोमान की आंखों में झांका। रोमान एक तरफ़ को खड़ा था बन्दूक़ पर कोहनियां टिकाये जैसे कि कुछ हुआ ही न हो।

"कज़्ज़ाक ने अपना बन्दूरा ज़ोर से पेड़ पर दे मारा! टुकड़े-टुकड़े हो गये बन्दूरा के। जंगल भर में उसकी आह-कराह गूंज उठी।

"'तो जाये जहन्नुम में, मेरी बला से! जो आदमी अक़्ल की बात पर कान नहीं देता, उसका वहां, दूसरी दुनिया में दिमाग़ ठिकाने कर दिया जायेगा... चौधरी, मुझे लगता है कि तुम्हें वफ़ादार नौकर की ज़रूरत नहीं।'

"चौधरी उसकी बात का जवाब भी नहीं दे पाया। ओपानास कूदकर जा बैठा अपने घोड़े पर और चल दिया। हंकवे भी घोड़ों पर सवार हो गये। रोमान ने बन्दूक़ कंधे पर लटकाई और वह भी जा चढ़ा अपने घोड़े पर। हां, मगर घर के पास से जाते हुए उसने पुकारकर ओक्साना से कहा—

"'छोकरे को सुला दे, ओक्साना! उसके सोने का वक़्त हो गया। हां और सुनो, चौधरी के लिये भी बिस्तर लगा दो।'

"बस क्या था, झटपट सब एक ही रास्ते से जंगल की ओर चल दिये। चौधरी घर के अन्दर गया। बाहर सिर्फ़ पेड़ के साथ उसका घोड़ा बंधा रह गया। अंधेरा गहराने लगा था, जंगल शोर मचा रहा था और बरसात अपना टपाटप का गीत अलाप रही थी, ठीक वैसे ही जैसे कि इस समय... ओक्साना ने मुझे घास-फूस की कोठरी में लिटा दिया, मुझपर सलीब बनाया... कुछ देर बाद मैंने ओक्साना के रोने की आवाज़ सुनी।

"ओह, मैं तब बिल्कुल छोटा-सा था, छोकरा-सा। कुछ भी तो समझ नहीं पा रहा था कि मेरे इर्द-गिर्द यह क्या गड़बड़-घुटाला हो रहा है! कोठरी में सिकुड़ा-सिमटा पड़ा रहा, जंगल में तूफ़ान का गीत सुनता रहा और मेरी आंख लगी झपकने।

"ओह, अचानक मुझे घर के क़रीब किसी के पैरों की आहट सुनाई दी... कोई पेड़ के पास पहुंचा और उसने चौधरी का घोड़ा खोल लिया। घोड़ा हिनहिनाया, उसने पांव पटका। वह घोड़े को ले भागा जंगल में, घोड़े की टापें सुनाई देती रहीं और फिर बन्द हो गईं... फिर कोई घोड़ा दौड़ाता हुआ आया, और इस बार घर के क़रीब आ पहुंचा। वह घोड़े से कूदा और सीधे खिड़की की तरफ़ लपका।

"'ओ चौधरी, ओ चौधरी!..' बूढ़ा बोगदान ऊंची आवाज़ में चिल्लाया। 'अरे चौधरी, जल्दी से उठ बैठो! नीच कज़्ज़ाक के मन में खोट है। उसी ने तुम्हारा घोड़ा जंगल में डाल दिया है।'

"बूढ़ा बोगदान अपनी बात कह भी नहीं पाया था कि किसी ने उसे पीछे से आ दबाया। फिर जैसे कोई भारी-भरकम चीज़ गिरती है, ऐसा धमाका हुआ। मेरा तो दम निकल गया...

"चौधरी ने दरवाज़ा खोला, बन्दूक़ लिये हुए बाहर निकला। ड्योढ़ी में ही रोमान ने उसे धर लिया, सीधा झोंटों पर हाथ मारा और धड़ाम से पटक दिया ज़मीन पर...

"चौधरी ने समझ लिया कि अब मारे गये। लगा गिड़गिड़ाने –

"'अरे रोमान! छोड़ दे मुझे। मेरी नेकी का यही बदला दे रहा है तू मुझे?'

"रोमान ने जवाब दिया –

"'अच्छी तरह याद है मुझे, दुष्ट चौधरी! तूने जो नेकी की है मेरे साथ और मेरी बीवी के साथ। अब मैं तुम्हें तुम्हारे एहसान का पूरा-पूरा बदला दूंगा...'

"तब चौधरी ने ओपानास की दुहाई दी –

"'अब तू ही मेरी मदद को आ, मेरे वफ़ादार सेवक! मैं तो तुझे बेटे की तरह मानता हूं।'

"ओपानास ने जवाब दिया –

"'तूने अपने वफ़ादार सेवक को कुत्ते की तरह दुतकार दिया था। तू मुझे ऐसे प्यार करता था जैसे लाठी पीठ से प्यार करती है और अब ऐसे जैसे कि पीठ लाठी से... मैंने तो तेरे सामने नाक रगड़ी, तेरी मिन्नत-समाजत की – मगर तूने कान ही नहीं दिया...'

"अब चौधरी ने ओक्साना की दुहाई दी –

"'मेरी ओक्साना, अब तू ही आगे आ, मुझे बचा। तू दिल की बहुत भली है।'

"ओक्साना आगे आई तो, पर हाथ फैलाकर रह गई –

"'चौधरी, मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाई, हाथ-पांव जोड़े – तुमसे कहा कि मेरी जवानी पर रहम करो, मेरी आबरू नहीं लूटो, मैं विवाहिता नारी हूं। पर नहीं, तुम्हें दया नहीं आई मुझपर और अब ख़ुद मेरी दुहाई देते हो... मैं भला कर ही क्या सकती हूं, बेबस नारी?'

"'छोड़ दो मुझे,' चौधरी फिर चिल्लाया—'मेरी ख़ातिर तुम सब साइबेरिया में पड़े सड़ोगे...'

"'हमारी चिन्ता नहीं करो, चौधरी,' ओपानास ने कहा, 'रोमान तो तुम्हारे हंकवों से पहले दलदल में जा पहुंचेगा। रही मेरी बात तो तुम्हारी कृपा से मैं दम का दम हूं, अपने सिर की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं मुझे। बन्दूक़ कंधे पर लटकाऊंगा और जंगल में जा पहुंचूंगा... तगड़े और मज़बूत कुछ छोकरे अपने साथ मिला लूंगा और बस जंगल में मंगल रहेगा... रात को जंगल से बाहर सड़क पर पहुंच जाया करेंगे और जैसे ही कोई गांव नज़र आयेगा, सीधे चौधरी की हवेली पर धावा बोलेंगे। ए रोमान, ज़रा उठाना भई चौधरी मेहरबान को, बाहर बारिश दिखा दें।'

"चौधरी की जब एक न चली तो लगा ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने। रोमान था कि अपने आप भालू की तरह गुर्रा रहा था और कज़्ज़ाक उड़ा रहा था मज़ाक़। तो इस तरह वे बाहर निकले।

"मुझे तो डर ने आ दबोचा। मैं घर के अन्दर भागा और सीधा पहुंचा ओक्साना के पास। मेरी ओक्साना बेचारी बैठी थी तख़्ते पर—उसका रंग एकदम ऐसे सफ़ेद हुआ पड़ा था जैसे कि दीवार...

"इस बीच जंगल में सचमुच ही ज़ोर का तूफ़ान आ गया था—तरह-तरह की आवाज़ों में चीख़-चिल्ला रहा था जंगल,

हवा रो रही थी, विलाप कर रही थी और रह-रहकर बिजली कड़क रही थी। हम दोनों – मैं और ओक्साना – अलावघर पर बैठे थे। अचानक मुझे जंगल से किसी की कराह सुनाई दी। ओह, कितना दर्द था उस कराह में! अभी तक भी जब उसकी याद आ जाती है, तो दिल तड़प उठता है। वैसे देखो तो कितने अधिक बरस बीत गये हैं...

"'ओक्साना,' मैंने पूछा, 'मेरी प्यारी ओक्साना, कौन है जो इस तरह जंगल में कराह रहा है?'

"ओक्साना मुझे बांहों में लेकर झुलाने लगी।

"'सो जा बेटे, सो जा मेरे बच्चे,' उसने कहा, 'कुछ नहीं, यह तो योंही जंगल शोर मचा रहा है।'

"जंगल तो सचमुच ही शोर मचा रहा था। ओह, कैसा भयानक शोर था वह!

"हम इसी तरह कुछ देर तक और बैठे रहे। अचानक मुझे सुनाई दिया कि किसी ने जंगल में गोली दाग़ी है।

"'ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना,' मैंने कहा, 'किसने यह गोली चलाई है जंगल में?'

"मगर वह मुझे पहले की तरह ही बांहों में झुलाती रही। फिर बोली –

"'चुप रह, चुप रह, मेरे बच्चे। यह तो बिजली कड़की है जंगल में।'

"मगर उसकी अपनी आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी हुई थी। मुझे वह कसकर छाती से चिपटाती गई और यह लोरी गाती रही—'शोर मचाये, शोर मचाये, जंगल शोर मचाये, मेरे बच्चे...'

"इस तरह उसकी बांहों में झूलता हुआ ही मैं सो गया...

"सुबह हुई तो मैं उछलकर खड़ा हुआ, प्यारे। देखता क्या हूं कि सूरज चमक रहा है। घर में अकेली ओक्साना ही सोई पड़ी है, कपड़े पहने हुए। मुझे पिछली रात की बातें याद आईं, तो मैंने सोचा कि कोई सपना देखा होगा मैंने।

"पर नहीं, वह सपना नहीं था। ओह, वह सपना नहीं था! वह हक़ीक़त थी। मैं भागकर घर से बाहर आया, जंगल में पहुंचा। जंगल में चिड़ियां चहचहा रही थीं और पत्तों पर ओस की बूंदें चमक रही थीं। मैं भागकर झाड़ियों की तरफ़ गया। वहां क्या देखा कि चौधरी और उसका वफ़ादार नौकर बोगदान एक-दूसरे के क़रीब पड़े हैं। चौधरी शान्त नज़र आ रहा था और उसमें मानो ख़ून का तो नाम ही नहीं था। बोगदान के बाल कबूतर के समान सफ़ेद थे और उसकी ऐंठ और अकड़ वैसे ही थी मानो ज़िन्दा हो। और चौधरी तथा नौकर दोनों की छाती पर ख़ून ही ख़ून था।"

. . . .

इतना कहकर बूढ़े बाबा ने गर्दन झुका दी और चुप्पी साध ली। यह देखकर मैंने पूछा—

"यह तो तुमने बताया नहीं, बाबा कि बाक़ी लोगों का क्या हुआ?"

"ओह! हुआ क्या, वही कुछ जो कज्ज़ाक ओपानास ने कहा था। बरसों तक भटकता रहा वह जंगल में, छोकरों के साथ रास्तों पर निकलता और चौधरियों की हवेलियों पर टूटता। जन्म से ही क़िस्मत में यही कुछ लिखा था उसकी। बाप-दादों ने भी यही कुछ किया था और, जो उसकी क़िस्मत में था, वह भी सामने आया। कई बार वह हमारे इस घर में भी आया। मगर अक्सर वह तभी आता, जब रोमान घर पर न होता। वह आता, बैठता, गाने गाता और बन्दूरा बजाता। जब उसके साथी साथ होते, तो ओक्साना और रोमान उनकी ख़ूब आवभगत करते। ओह, सच बात कहूं तुमसे, प्यारे—दाल में कुछ काला था, कुछ गड़बड़ मामला था। जल्द ही मक्सिम और ज़ख़ार जंगल से आनेवाले हैं। तुम ग़ौर से देखना उन दोनों को। मैं तो उनसे कुछ कहता-वहता नहीं हूं, पर जो रोमान और ओपानास को जानते थे, उन्हें तो पहली ही नज़र में यह बात साफ़ हो जाती है कि कौन शक्ल-सूरत में किससे मिलता-जुलता है। बेशक यह

सही है कि ये बेटे नहीं, पोते हैं... तो देख लो मियां, कैसी-कैसी बातें हो चुकी हैं मेरी आंखों के सामने इस जंगल में...

"बहुत ज़ोर से शोर मचा रहा है जंगल – तूफ़ान आयेगा!"

३

बूढ़े बाबा ने अन्तिम शब्द इस तरह कहे मानो थक गया हो। सम्भवतः उसकी ज्वार अब उतार पर थी और वह मन मारकर ऊबे-ऊबे अपनी कहानी जारी रख रहा था। ज़बान उसकी लड़खड़ाने लगी थी, सिर उसका कांप रहा था और आंखों में आंसू झलक रहे थे।

धरती पर शाम उतर आई थी। जंगल में अन्धेरा गहरा चुका था। घर के चारों ओर वन ऐसे झोंके खा रहा था मानो समुद्र में ज्वार-भाटे आ रहे हों। वृक्षों की काली-काली चोटियां ऐसे झूम रही थीं मानो बुरे मौसम में समुद्र में उठने-गिरनेवाली लहरें हों।

कुत्तों को मालिकों के पैरों की आहट मिली, तो लगे ख़ुशी से भौंकने। दोनों वन-रक्षक घर की ओर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ा रहे थे। उनके पीछे-पीछे हांफती हुई मोत्र्या उस गाय को हांकती ला रही थी, जो खो गई थी। अब हम सब इकट्ठे हो गये।

कुछ क्षण बाद हम घर के अन्दर जा बैठे। तन्दूर में आग जल रही थी और मोत्र्या "दावत" का इन्तज़ाम करने में जुटी थी।

मैंने ज़खार और मक्सिम को यों तो अनेक बार देखा था। मगर आज देखा तो ख़ास ध्यान से। ज़खार का चेहरा सांवला और माथा झुका हुआ था, भौंहें गोल थीं, माथे पर जुड़ी हुईं। उसकी आंखों में कठोरता थी, पर बल-जनित नेक स्वभाव की झलक साफ़ दिखाई दे रही थी। मक्सिम की आंखों में मस्ती थी, मानो उसकी भूरी-भूरी आंखें स्नेह से उमड़ी पड़ती हों। अपने घुंघराले बालों को वह बार-बार पीछे की ओर झटकता। उसकी हंसी में तो निराली गूंज थी। दूसरों को भी इस हंसी की छूत लग जाती थी।

"कहिये, बूढ़े बाबा ने आपको कोई क़िस्सा-विस्सा नहीं सुनाया, हमारे दादा की आपबीती?" मक्सिम ने पूछा।

"हां, सुनायी तो है," मैंने जवाब दिया।

"हमेशा बस, ऐसा ही होता है! जंगल जब ज़ोर से शोर मचाता है, तो पुरानी स्मृतियां इन्हें परेशान करने लगती हैं। अब क्या मजाल कि रात भर इनकी आंख लग जाये।"

"बिल्कुल छोटे बच्चे के समान है," बूढ़े बाबा के लिये शोरबा डालते हुए मोत्र्या ने कहा।

बूढ़ा बाबा मानो यह समझ ही नहीं पा रहा था कि उसकी चर्चा हो रही है। वह बिल्कुल ढलक गया था, अपने ही में डूब गया था। कभी-कभी उसके चेहरे पर बेमानी-सी, खोई-सी मुस्कान झलक उठती और वह सिर हिलाने लगता। जब जंगल के तूफ़ानी झंझावात का कोई तेज़ झोंका झोंपड़े को झकझोरता, तो वह चौंक उठता और उसके कान खड़े हो जाते। डरे-डरे, सहमे-सहमे चेहरे से वह कुछ सुनने की कोशिश करता।

कुछ ही देर बाद जंगल के इस झोंपड़े में ख़ामोशी छा गई। केवल दीपक की मद्धिम-सी लौ टिमटिमाती रह गई। हां, झींगुर अपना झीं-झीं का एकसुरा राग अलापता जा रहा था... ऐसा लगता था मानो जंगल में हज़ारों ज़ोरदार और अस्पष्ट आवाज़ें एक-दूसरी में गड्डमड्ड हो गई हैं। घुप अंधेरे में ये आवाज़ें मानो किसी अनजाने ख़तरे की ओर संकेत कर रही थीं। ऐसे मालूम पड़ता था मानो अंधेरे में कोई तूफ़ानी शक्ति शोर-शराबे की मजलिस लगाये बैठी थी। इसमें हिस्सा लेनेवाले सभी दिशाओं से आये हुए थे। उन्होंने मानो जंगल की इस झोंपड़ी पर चारों तरफ़ से धावा बोलने की ठान ली थी। बीच-बीच में यह अनबूझ-सा शोर और बढ़ जाता, उग्र हो उठता और हवा के झोंके की तरह बह जाता। उस वक़्त दरवाज़ा चरचरा उठता। तब बिल्कुल ऐसे लगता कि मानो कोई ग़ुस्से में फुंकारता हुआ दरवाज़े पर पिल पड़ा है। रात

के इस तूफ़ान में चिमनी से ऐसी दर्दभरी और कराहती आवाज़ें निकल रही थीं कि सुननेवाले का दिल डूब-डूब जाये। फिर थोड़ी देर को तूफ़ानी झोंके रुक जाते। जानलेवा गहरा सन्नाटा डरे-सहमे दिल पर बहुत भारी गुज़रता। फिर वही गुल-गपाड़ा शुरू हो जाता। ऐसा महसूस होता मानो बरसों पुराने सनोबरों ने रात की इस तूफ़ानी हलचल के साथ अपनी जगहों से उड़कर अनजाने विस्तारों में जा पहुंचने का अचानक इरादा बना लिया है।

कुछ मिनट के लिये मुझे झपकी-सी आ गई, बहुत ही थोड़ी देर को। जंगल में तूफ़ान गूंज रहा था, तरह-तरह के सुरों में, तरह-तरह की आवाज़ों में। रह-रहकर दीप की लौ फड़फड़ा उठती, झोंपड़ी को जगमगा देती। बूढ़ा बाबा अपने तख़्ते पर बैठा था, हाथ फैलाकर अपने चारों ओर कुछ टटोल रहा था। उसे मानो इस बात की आशा बंधी थी कि कोई उसके क़रीब ही मौजूद है। इस बेचारे बूढ़े बाबा के चेहरे पर भय और बाल-सुलभ बेबसी और लाचारी का भाव झलक रहा था। मुझे उसकी दर्दभरी आवाज़ सुनाई दी –

"ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना, कौन यह जंगल में कराह रहा है?"

उसने चौंककर हाथ फैलाया और कान लगाकर कुछ सुना।

"ओह!" वह फिर बड़बड़ाया—"कोई भी तो नहीं कराह रहा। वह तो तूफ़ान का शोर है जंगल में... और कुछ भी तो नहीं, जंगल शोर मचा रहा है, जंगल शोर..."

इसी तरह कुछ मिनट और गुज़र गये। छोटी-छोटी खिड़कियों में जब-तब बिजली की नीलिमा कौंध जाती, ऊंचे-ऊंचे वृक्ष घड़ी भर को खिड़कियों के बाहर झलक उठते और फिर तूफ़ान के भयानक शोर के बीच अन्धेरे में डूब जाते। मगर तभी बहुत तेज़ रोशनी हुई, दीप की टिमटिमाती लौ एकदम अंधी हो गई और कहीं पास में ही कड़कड़ाकर जंगल में बिजली गिरी।

बूढ़ा बाबा फिर परेशान हो उठा—

"ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना, किसने यह गोली चलाई है जंगल में?"

"सो जाओ, बूढ़े बाबा, सो जाओ," तन्दूर की छत पर से मोत्या का शान्त स्वर सुनाई दिया। "जब तूफ़ान आता है, तो हमेशा ऐसा ही होता है। रात-रात भर ये ओक्साना को पुकारते रहते हैं। इतना भी भूल जाते हैं कि एक ज़माना हो गया ओक्साना को दूसरी दुनिया में पहुंचे। ओह!"

मोत्या ने जम्हाई ली, भगवान को याद किया और झोंपड़े में फिर से सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे को बेधता था जंगल का शोर और बूढ़े बाबा का चौंक-चौंककर बड़बड़ाना—

"जंगल गूंज रहा है, जंगल शोर मचा रहा ... ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना..."

कुछ ही देर बाद मूसलधार बारिश फट पड़ी। वह शोर मचाया बारिश ने कि तेज़ हवा के झोंकों की सांय-सांय और सनोबर के वृक्षों की आहें-कराहें उसमें डूबकर रह गईं।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन-सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।